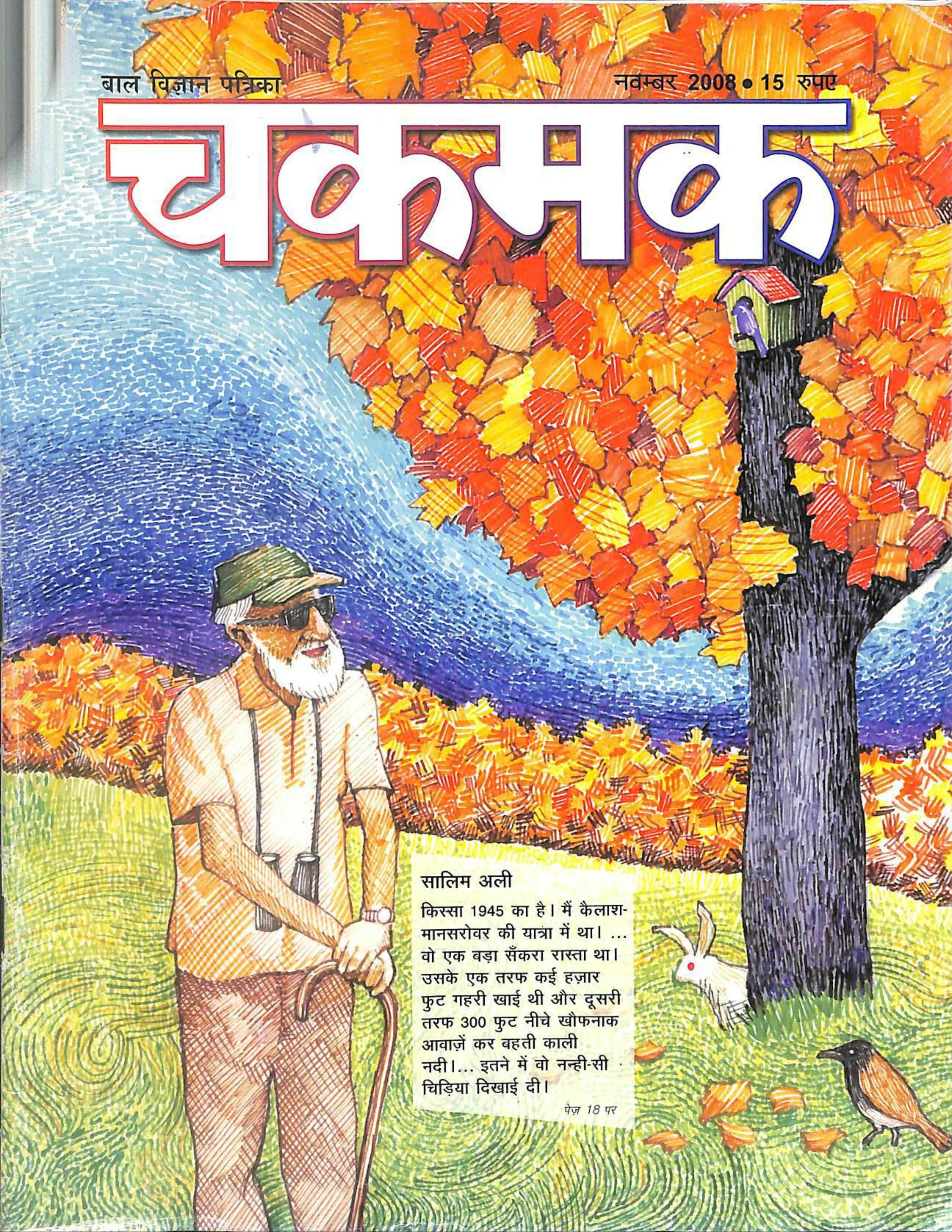
बाल विज्ञान पत्रिका

नवम्बर 2008 • 15 रुपए

चकमक



सालिम अली

किस्सा 1945 का है। मैं कैलाश-मानसरोवर की यात्रा में था। ... वो एक बड़ा सँकरा रास्ता था। उसके एक तरफ कई हज़ार फुट गहरी खाई थी और दूसरी तरफ 300 फुट नीचे खौफनाक आवाज़ें कर बहती काली नदी।... इतने में वो नन्ही-सी चिड़िया दिखाई दी।

पेज़ 18 पर

मेरा पन्ना



सोहेल अनवर बोरकर, वडाला, मुम्बई, महाराष्ट्र

आज रविवार है

आज रविवार है
तोते को बुखार है
तोता गया बाग में
बाग में था डॉक्टर
डॉक्टर ने लगाई सुई
तोता बोला उई उई उई

प्रस्तुति - अवनीन्द्र कुमार राय, कोलकाता



प्रिया सहदेव, छठी, बिल्डोरा, मुम्बई, महाराष्ट्र

अद्दक बद्दक चम्पा
दिल में लगा घंटा
एक साल के नाले में
बारह मिठ्ठू बैठे थे
एक मिठ्ठू कच्चा
वो हिरण का बच्चा



प्रस्तुति एवं चित्रः तरुण-बबलेश, होशंगाबाद, म.प्र.

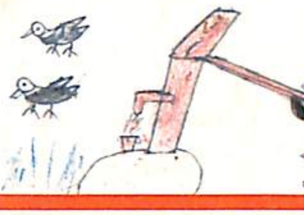




दीक्षा रावत,
पता नहीं लिखा



शिवाजी पटेल,
पता नहीं लिखा



लक्ष्मी डावी,
छठी, उज्जैन, म.प्र.



चकमक

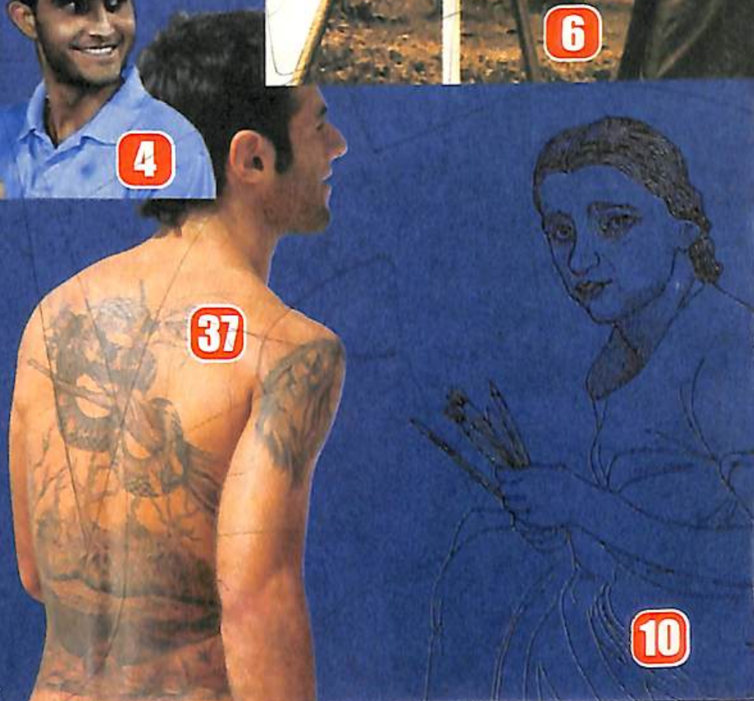
बाल विज्ञान पत्रिका • 266 • नवम्बर 2008

इस अंक में











आवरणः दिलीप चिंचालकर

एस.आई.जी/आई.सी.आई.सी.आई. बैंक के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित।

सदस्यता शुल्क
एक प्रति - 15.00
वार्षिक - 150.00
दो साल - 275.00
तीन साल - 400.00
आजीवन - 3000.00

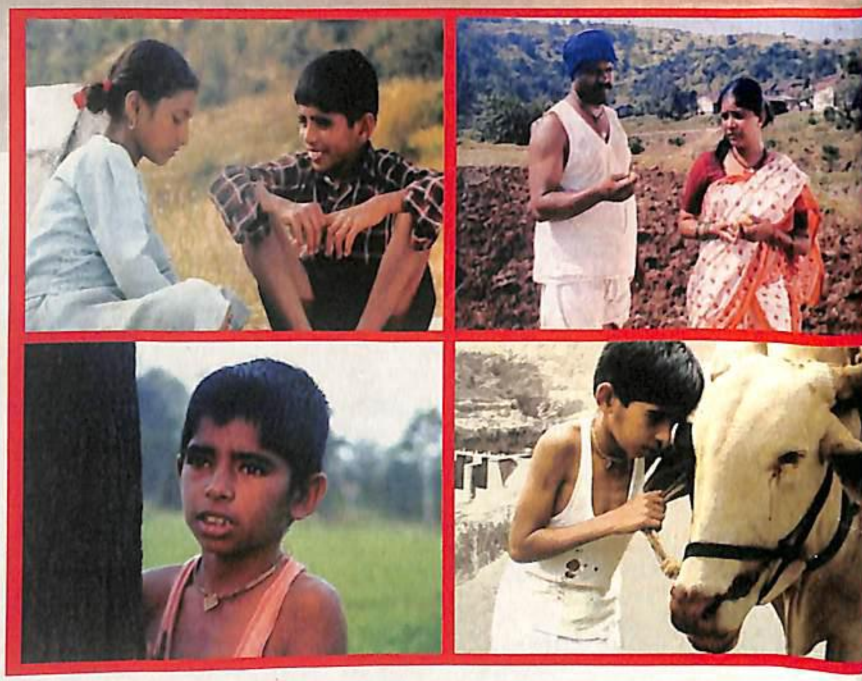
सभी डाक खर्च हम देंगे। चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं। भोपाल के बाहर के चैक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर
भोपाल, म.प्र. 46 2016
फोनः (0755) 2671017, 2550976, 6549033
फैक्सः (0755) 2551108
chakmak@eklavya.in
circulation@eklavya.in
www.eklavya.in



टिंग्या

ओजस



महाराष्ट्र की जुन्नर तहसील में एक गाँव है - राजुरी। टिंग्या इसी गाँव के एक गरीब किसान का बेटा है। उम्र होगी यही कोई 8-9 साल। टिंग्या के परिवार की स्थिति वैसी ही है जैसी आज महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश के अधिकतर किसानों की है। इनके बारे में तुमने अखबारों या न्यूज़ चैनल में देखा-पढ़ा होगा। टिंग्या का परिवार साहूकार के कर्ज़ में डूबा हुआ है। और ऊपर से बारिश ना होने के कारण ठीक से अनाज पैदा नहीं हो रहा है। बीज बोने के लिए साहूकार और पैसे नहीं दे रहा है। पहला कर्ज़ चुका ना पाने के कारण टिंग्या के पिता को साहूकार और गाँव के अमीर लोगों से बुरा-भला सुनना पड़ रहा है। इतना सब होने के बावजूद वे दुखी नहीं हैं... हार कर नहीं बैठे हैं। वे परिस्थितियों से लड़ रहे हैं। अच्छी ज़िन्दगी के लिए लगातार कोशिश कर रहे हैं। एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

उसी परिवार का एक और सदस्य है - चितंग्या। चितंग्या और टिंग्या की बहुत बनती है। वे बहुत अच्छे दोस्त हैं। चितंग्या टिंग्या से दो महीने छोटा है। दोनों साथ-साथ भाइयों जैसे पले-बढ़े हैं।

एक रात खेत से आते वक्त चितंग्या एक गड्ढे में गिर जाता है। बड़ी मुश्किल से उसे बाहर निकाला जाता है। वो बुरी तरह से घायल है। उसकी एक टाँग टूट गई है। अब वो हल नहीं खींच सकता है। पूरा परिवार रात-रात जागकर उसकी देखभाल करता है। टिंग्या चितंग्या के साथ ही बाहर सोता है।

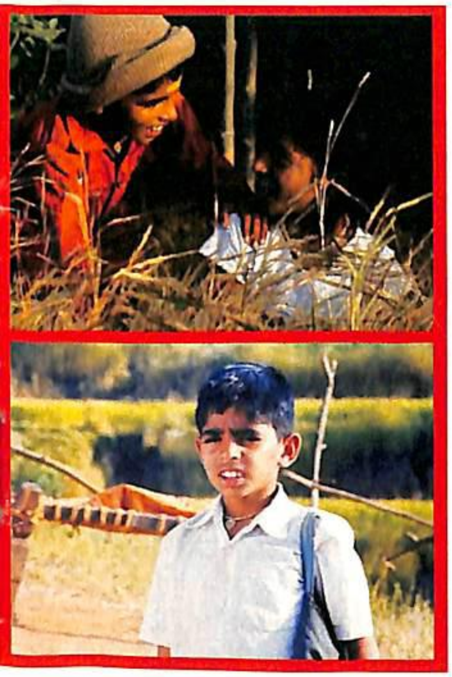
टिंग्या के पिता कारभारी को आलू बोने हैं। पहली फसल बर्बाद हो गई थी। पर अब हल कौन चलाएगा? ना तो साहूकार नए बैल के लिए पैसे दे रहा है। ना ही रिश्तेदार ट्रैक्टर दे रहे हैं। अब कारभारी के सामने एक ही विकल्प है - बैल बेचना। जब तक चितंग्या नहीं बेचेंगे दूसरा बैल कहाँ से आएगा? हल कैसे चलेगा तो फसल कैसे बोई जा सकेगी? फसल नहीं बोई गई तो परिवार कैसे चलेगा? साहूकार गला पकड़ लेगा। सबसे बुरी बात तो यह कि चितंग्या अब खेती के काम नहीं आ सकता इसलिए अब उसे कसाई को ही बेचा जा सकता है।

टिंग्या के पड़ोस में रशीदा का परिवार रहता है। वो भी टिंग्या की अच्छी दोस्त है। दोनों साथ खेलते हैं। रशीदा की बूढ़ी दादी है, जो अब काफी बीमार रहती हैं। एक रात उनका पैर फिसलता है और वे बिस्तर पकड़ लेती हैं। उनका एक पड़ोसी कर्ज़ में इतना डूबा है कि एक दिन खुदकुशी कर लेता है। पूरे गाँव की हालत भी लगभग ऐसी ही है।

एक बार शाम के वक्त टिंग्या घर की दहलीज़ पर बैठा था। उसकी माँ पानी भरकर अन्दर आती हैं और बोलती हैं, "टिंग्या, शाम को लक्ष्मी के आने के समय दहलीज़ पर नहीं बैठते।"

वो पूछता है, "क्या कहती हो माँ? क्या लक्ष्मी आ भी रही है?" इस सवाल पर माँ के पास सिवा चुपचाप अन्दर जाने के कोई चारा नहीं बचता।

इसी तरह के सवाल टिंग्या चितंग्या के बारे में भी करता है। टाँग टूटने के कारण एक तरफ तो हम चितंग्या को मार रहे हैं, फिर दूसरी तरफ रशीदा की दादी को दवाइयाँ दे दे कर ज़िन्दा रखने की कोशिश क्यों की जा रही है? टिंग्या नहीं मान सकता कि जानवरों पर इन्सानों से अलग नियम लागू हो सकते हैं। जब तक चितंग्या ठीक था वो टिंग्या के भाई जैसा था और अब वो सिर्फ एक नाकाम जानवर कैसे बन गया? इस तरह के नियम कौन बनाता है?



इन सवालों के जवाब टिंग्या को आखिर तक नहीं मिलते। उसकी माँ टिंग्या के सवालों को समझ सकती है। लेकिन इन्सान द्वारा बनाए नियमों पर चलने के अलावा उनके पास कोई विकल्प नहीं बचता। टिंग्या चितंग्या को बिकने से बचा नहीं पाता। चितंग्या कसाई के हाथ चला जाता है। पूरा परिवार दुखी होता है।

इसी दौरान उनकी गाय एक बछड़ा जनती है। टिंग्या उसका नाम चितंग्या रखता है।

धीरे-धीरे टिंग्या बड़ा होने लगता है। वो समझने लगता है कि बुढ़ापे और मौत पर सवाल नहीं पूछे जा सकते हैं। जानवरों के जीवन और इन्सानों के जीवन की तुलना नहीं की जा सकती। ज़िन्दगी का मतलब नई पैदाइश भी है। एक चीज़ खत्म होने पर ज़िन्दगी खत्म नहीं होती। ज़िन्दगी चलती रहती है।

निर्देशक मंगेश हाडवले की यह पहली फिल्म है। इसके कलाकार कभी किसी अभिनय स्कूल में नहीं गए। बल्कि वह गाँव के ही लोग हैं। शरद गोयकर ने टिंग्या की भूमिका निभाई है। वे खुद ऐसे ही किसान परिवार से हैं। पूरी फिल्म टिंग्या और रशीदा (तरन्नुम पठान) ने खड़ी की है। इस फिल्म को तथा अभिनय के लिए शरद गोयकर को कई राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय अवार्ड मिले।

इस फिल्म में ना तो बड़े-बड़े संवाद हैं और ना ही आँखों से पानी निचोड़ने वाले दृश्य। फिर भी फिल्म को लोगों ने बहुत पसन्द किया है। उन्हें सोचने पर मजबूर किया है कि बावजूद इतनी तकलीफों के कैसे टिंग्या और उसका परिवार अपनी ज़िन्दगी और चेहरे की मुस्कुराहट बरकरार रखते हैं। और जो अपने देश के हर गाँव के परिवार में दिखता है।

अक्सर मान लिया जाता है की पढ़ाई-लिखाई से, उम्र बढ़ने से, अनुभवों से इन्सान के तर्क सही होते जाते हैं। जबकि शायद सच तो यह है कि कई बार बच्चों के सवालों के जवाब तो तर्क से दिए ही नहीं जा सकते। बच्चों के सवालों का उल्टा-पुल्टा जवाब देकर टाल दिया जाता है या उसका मज़ाक उड़ाकर सवाल को ही नकार दिया जाता है। धीरे-धीरे सवाल जब खत्म होने लगते हैं तब माना जाता है कि बच्चा अब बड़ा हो गया है।

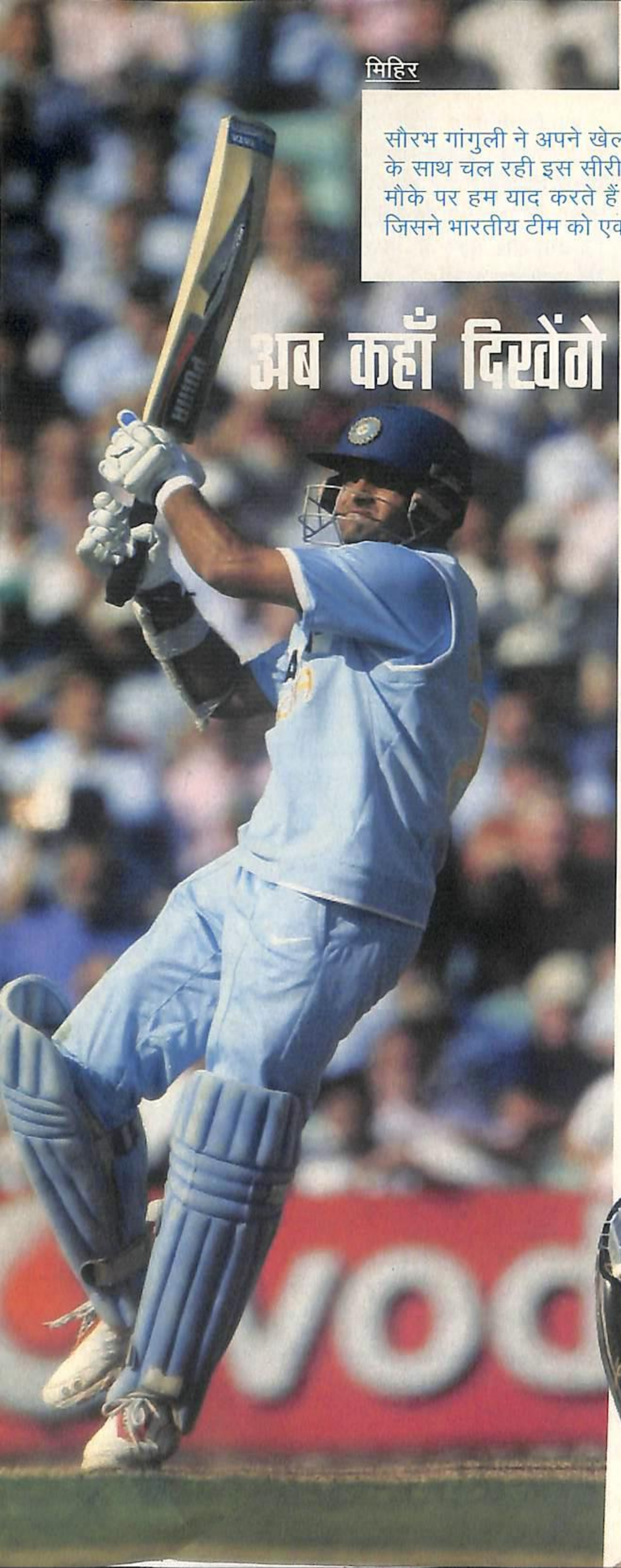
मेरा पन्ना



अनु डामोर, तीसरी, इन्दौर, म.प्र..

मिहिर

सौरभ गांगुली ने अपने खेल जीवन के अन्त की घोषणा कर दी है। ऑस्ट्रेलिया के साथ चल रही इस सीरीज़ के बाद वो अपना बल्ला खूँटे पर टाँग देंगे। इस मौके पर हम याद करते हैं कुछ खास क्षण उस खिलाड़ी की खेल ज़िन्दगी के जिसने भारतीय टीम को एक नई शक्ल दी, लड़ने का जोश दिया।



अब कहाँ दिखेंगे ऑफ साइड के वे शॉट!

सौरभ गांगुली ने अपना पहला एकदिवसीय 1992 में ऑस्ट्रेलिया में खेला और पहला टेस्ट 1996 में इंग्लैंड के लॉर्ड्स में। पहले ही टेस्ट में उन्होंने शतक (131) जमाया। यह राहुल द्रविड़ का भी पहला टेस्ट था जिन्होंने 95 रन बनाए थे। यह इंग्लैंड दौरा नवजोत सिंह सिद्धू के बीच में से ही वापिस भारत लौट आने की घटना की वजह से भी याद किया जाता है। सिद्धू की वापसी और संजय मांजरेकर की चोट की वजह से ही गांगुली और द्रविड़ को टेस्ट खेलने का मौका मिला। इसका उन्होंने पूरा फायदा उठाया। कमाल तो यह था कि सौरभ ने अपने दूसरे टेस्ट में एक और शतक (136) जड़ दिया। उनकी पारियों को नज़दीक से देखने वाले साथी खिलाड़ी राहुल द्रविड़ ने दौरे के बाद कहा कि ऑफ साइड में गॉड के बाद गांगुली ही हैं। यह उनके ऑफ साइड के दर्शनीय स्ट्रोक-प्ले की तारीफ थी।

1997 में पकिस्तान के विरुद्ध कनाडा में सहारा कप के दौरान सौरभ लगातार 4 मैचों में सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी चुने गए। इसमें उनकी धीमी सीम गेंदबाज़ी का भी बहुत योगदान रहा जो कनाडा के ठण्डे मौसम में बहुत कारगर साबित हुई। एक मैच में तो उन्होंने सिर्फ 16 रन देकर 5 विकेट हासिल किए थे।

1997 में ही सौरभ ने एकदिवसीय क्रिकेट में पारी की शुरुआत करते हुए अपना पहला शतक जमाया। यहीं से सचिन और उनके बीच साझेदारी की शुरुआत हुई। उनकी जोड़ी आज तक एकदिवसीय मैचों की सर्वश्रेष्ठ सलामी जोड़ी मानी जाती है।

1999 का विश्व कप सौरभ का पहला विश्व कप था। श्रीलंका के विरुद्ध सिर्फ 158 गेंदों में 183 रन की उनकी पारी ने उन्हें हिन्दुस्तान के महान खिलाड़ियों में शामिल कर दिया। टांटन के मैदान के नज़दीक नदी बहती है। सौरभ के कई छक्के तो ऐसे थे कि गेंद नदी की तरफ गई और फिर मिली ही नहीं।



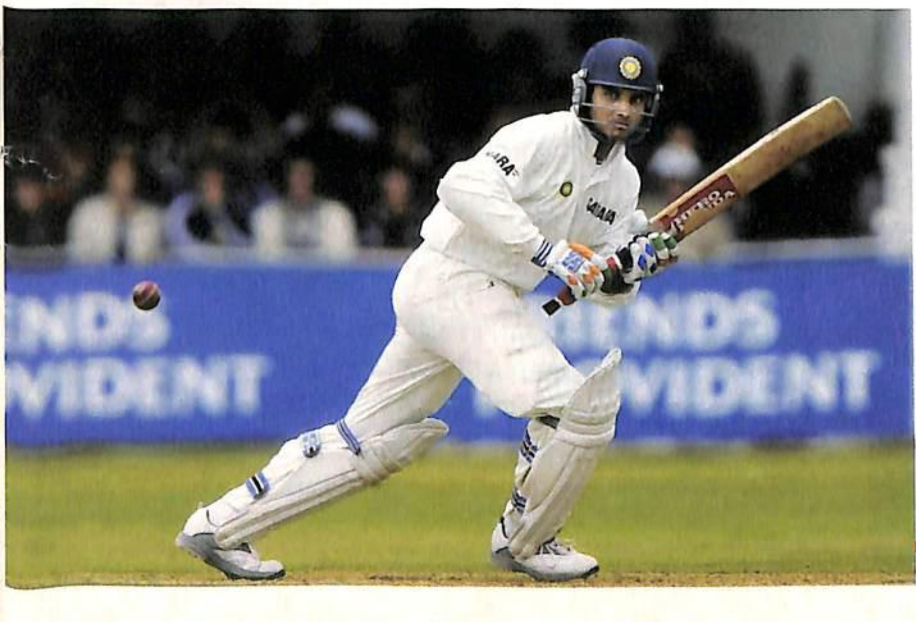
सौरभ को सन् 2000 में भारत का कप्तान बनाया गया। उनकी कप्तानी का सबसे महत्वपूर्ण लम्हा आज भी 2002 में जीती नेट-वेस्ट सीरीज़ को माना जाता है। जिस लॉर्ड्स में सौरभ ने अपना पहला शतक बनाया था उसी मैदान की बालकनी से उन्होंने अपनी शर्ट उतारकर हवा में लहराई। यह एक अविश्वसनीय जीत की खुशी थी। बहुत से लोग इस क्षण को भारतीय क्रिकेट का टर्निंग पॉइंट मानते हैं। एक नई टीम और युवा जोश का आत्मविश्वास इस घटना से उभरकर सामने आ गया। यही वो दौर था जब युवराज सिंह, मोहम्मद कैफ, हरभजन सिंह, ज़हीर खान, वीरेंद्र सहवाग जैसे खिलाड़ी सौरभ की कप्तानी में खेल कर विश्व स्तर तक पहुँचे। वैसे इस शर्ट उतारने को बहुत से लोगों ने क्रिकेट की परम्पराओं का अपमान माना लेकिन सौरभ को शायद यह तासीर फुटबाल से विरासत में मिली होगी जो उनका पसन्दीदा खेल है। इसे मुम्बई में फ्लिंटौफ के शर्ट उतारने का जवाब भी समझा गया।

2003 के विश्वकप में गांगुली की कप्तानी में भारत फाइनल में पहुँचा। 1983 के बाद यह भारत का विश्वकप में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन था। फाइनल में ऑस्ट्रेलिया के हाथों हार के बावजूद इसे भारत की बड़ी सफलता माना गया।

2007 विश्वकप सौरभ और टीम इंडिया के लिए एक बड़ी असफलता साबित हुआ। उन्हें टीम से बाहर कर दिया गया। लेकिन सौरभ को अभी कुछ और साबित करना था। वे खेलते रहे और टीम में वापसी की। वापसी के बाद उन्होंने पाकिस्तान के विरुद्ध दोहरा शतक बनाया जो उनका पहला दोहरा शतक था।

सौरभ को अपने सबसे पहले दौरे में ही "महाराज" का उपनाम मिला। कप्तान बनने के बाद उन्हें टीम के सभी खिलाड़ी "दादा" कहने लगे। यह नाम खूब लोकप्रिय हुआ। इंग्लैंड के पूर्व कप्तान जॉएफ बायकॉट सौरभ के बड़े फैन हैं। उन्होंने सौरभ को "प्रिंस ऑफ कोलकाता" नाम दिया। वैसे दादा को प्यार से "बंगाल टाइगर" भी कहा जाता है।

सौरभ के छक्कों को क्रिकेट के सबसे दर्शनीय छक्के कहा जाता है। उनके छक्कों में स्टम्प आउट होने का कोई डर नहीं होता। बहुत बार तो लगता कि वे गेंद आने से पहले ही तय कर लेते हैं कि इस पर छक्का मारना है और बेधड़क आगे निकल आते हैं। बल्लेबाज़ी की यह निडरता ही उन्हें एक दर्शनीय खिलाड़ी बनाती है।



मेरा पन्ना



दर्शना गोस्वामी, छठी, परेल मोईवाड़ा, मुम्बई



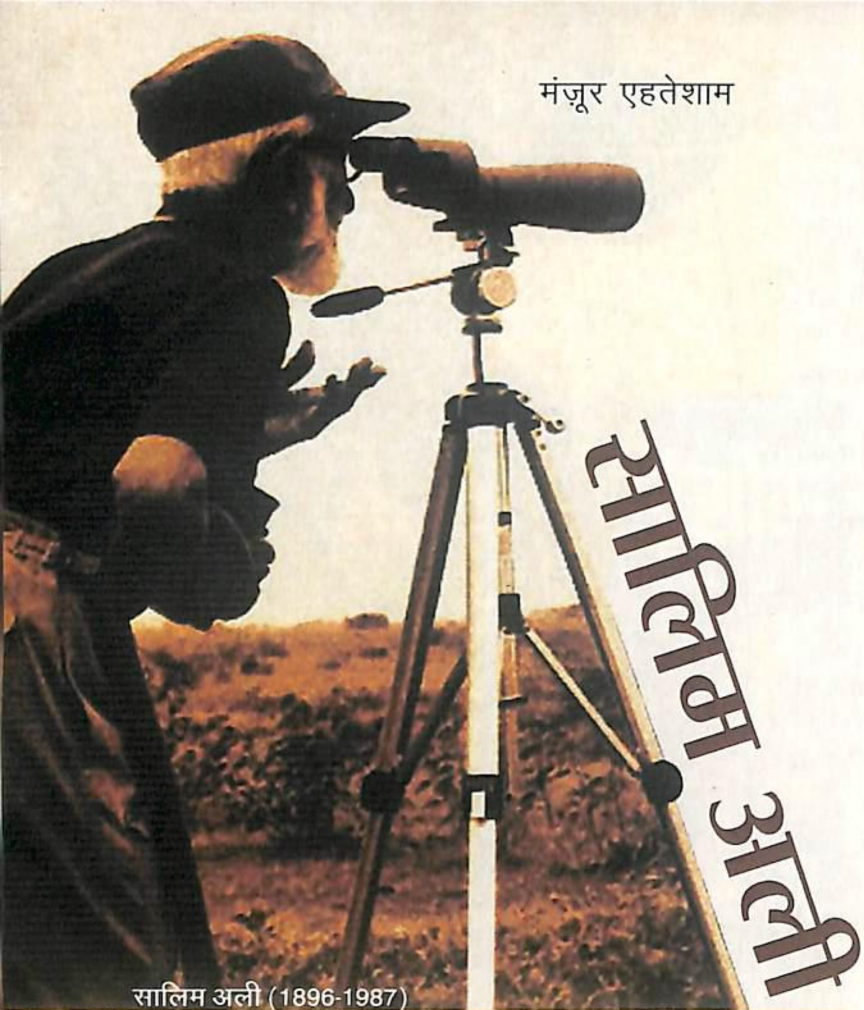
मौलिका शर्मा, तीसरी, मुम्बई



अस्सु-कूनी, धर्मशाला, हि. प्र.

मंज़ूर एहतेशाम

सालिम अली



सालिम अली (1896-1987)

सालिम अली मशहूर पक्षी विज्ञानी रहे हैं। पक्षियों की दुनिया को जानने-समझने के दीवाने! 12 नवम्बर सालिम अली का जन्म दिवस है। इस अवसर पर लाड अंकल उनसे हुई कुछ मुलाकातों को यहाँ याद कर रहे हैं।

<u>पी. एम. लाड</u>

मैं पहली बार सालिम अली से 1976 में मिला था। उन दिनों मैंने टिटहरी का उसके बच्चे के साथ एक फोटो खींचा था। टिटहरी जैसे चंचल, शर्मीले पक्षी का उसके बच्चे के साथ करीब से फोटो लेना बड़ी बात थी। मैंने बड़े गर्व से यह फोटो उन्हें दिखाया। फोटो को देखते ही वे बोले, "डोन्ट डू इट अगैन!" (फिर कभी ऐसा मत करना!)

क्या तुम्हें भी बच्चा घास से बँधा दिख रहा है?



"जी!" मैं बस इतना ही कह सका। वास्तव में हुआ यह था कि मैंने टिटहरी के बच्चे की एक टाँग को घास के तिनके से बाँध दिया था ताकि माँ-बच्चे का फोटो आसानी से लिया जा सके। तिनका मैंने बड़े करीने से बाँधा था। मैं नौसीखिया अपने को बहुत होशियार समझ रहा था पर उस्ताद की आँखों से मेरी चालाकी छुपी न रह सकी। उस दिन के बाद से मैंने हमेशा इस बात का ख्याल रखा कि पक्षी और बच्चों को कोई तकलीफ न हो और जहाँ तक हो सके घोंसले के पास फोटो न लिए जाएँ।

मेरी अगली मुलाकात उनसे हुई 1981 में। एक दिन बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी से डॉ. डेनियल का फोन आया। उन्होंने बताया कि सालिम अली खरमौर क्षेत्र देखने और अभ्यारण्य की सम्भावना तलाशने के लिए आ रहे हैं। हम सब अधिकारी बगलें झाँकने लगे। हमें बड़ा अफसोस हुआ कि हम खरमौर के बारे में कुछ भी नहीं जानते। तय हुआ कि अभी सालिम अली माण्डू में ही रुकें। जब कुछ समझ नहीं आया तो हम जावरा के विधायक भारत सिंह के यहाँ गए। जैसे ही हमने उनसे खरमौर के बारे में बात की वे बोले - बस पन्द्रह मिनट के भीतर खरमौर दिखा देते हैं। हमने झट से

दो इंच और जो मैं पीछे हुआ होता



यैलोनेप्ड युहीना

पक्षियों को देख सालिम अली इस कदर दीवाने हो जाते कि किसी और बात का होश ही न रहता। इसकी एक मिसाल उनकी आत्मकथा *द फॉल ऑफ ए स्पैरो* में मिलती है ... किस्सा 1945 का है। मैं कैलाश-मानसरोवर की यात्रा में था। ... वो एक बड़ा सँकरा रास्ता था। उसके एक तरफ कई हज़ार फुट गहरी खाई थी और दूसरी तरफ 300 फुट नीचे खौफनाक आवाज़ें करती काली नदी।... इतने में वो नन्ही-सी चिड़िया दिखाई दी। कुछ दूर एक झाड़ी पे बैठी। यैलोनेप्ड युहीना - यही नाम है उसका! मेरे लैंस के दायरे में आते-आते वो ज़रा और आगे फुदक गई। उसे देखने के लिए मैं एक कदम पीछे हुआ।... अचानक महसूस हुआ कि एक छोटा-सा पत्थर मेरी एड़ी से सरका। पहाड़ी से टकरा-टकरा कर लुड़कने की उसकी आवाज़ देर तक कानों में आती रही। ... मैं मुड़ा... जो देखा उसने मेरे रोंगटे खड़े कर दिए। दो इंच और जो मैं पीछे हुआ होता तो मैं भी पत्थर के पीछे-पीछे होता।

सालिम अली साब को खबर सुनाई। खरमौर को दूरबीन से देख वे झूम उठे। वे तीस-पैंतीस सालों बाद फिर से इसे देख रहे थे। उस दिन पहली बार मैंने खरमौर देखा था। उसे उछाल भरते हुए। मेंढक की तरह आवाज़ करते हुए। बाद में पता चला कि उस क्षेत्र के कई लोग उसकी अच्छी खासी जानकारी रखते थे।

इसी दौरान सालिम अली ने खरमौर के क्षेत्र को अभ्यारण्य घोषित करने की सलाह दी। 1981 से 84 तक हर साल वे खरमौर देखने रतलाम, धार ज़िलों में आते रहे। पक्षियों के अध्ययन के लिए रिंगिंग एक ज़रूरी चीज़ होती है। उन्होंने अपने हाथों से एक खरमौर को छल्ला पहनाया। खरमौर जून से लगभग 15 अगस्त तक पश्चिमी भारत में दिखाई देता है। आज तक प्रमाणिक रूप से नहीं पता कि बाकी के आठ महीने वह कहाँ बिताता है।



खरमौर को छल्ला पहनाते सालिम अली। उनके बाईं ओर खड़े हैं लाड अंकल।

1976 का एक वाकया तो भुलाए नहीं भूलता। सालिम अली जी के साथ मैं इन्दौर में अपने एक दोस्त के घर ठहरा था। इतने में दरवाज़े पर दस्तक हुई। एक शख्स, जो पेशे से इन्जीनियर था, अन्दर आया। मैंने सोचा वो सालिम अली से ही मिलने आया होगा। पर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ जब उसने कहा कि उसकी रुचि सालिम अली की दूरबीन में है। बाद में पता चलने पर सालिम जी बोले कि हो सकता है उसकी निगाह में दूरबीन ज़्यादा ज़रूरी हो। सभी अपनी रुचि के मुताबिक ही काम करते हैं।



इन्दिरा गाँधी से पुरस्कार प्राप्त करते सालिम अली (1976)

सालिम अली का खत इन्दिरा गाँधी के नाम

प्रिय इन्दिरा जी,

भरतपुर में चल रही अन्तर्राष्ट्रीय पक्षी संरक्षण परिषद की हाल की कॉन्फ्रेंस (3-6 दिसम्बर) में आए प्रतिभागी उस वक्त हैरान रह गए जब महाराज और उनकी बेटी की शादी में आए उनके मेहमानों ने झील की बत्तखों का ताबड़तोड़ शिकार करना शुरू किया। और यह तब हो रहा है जब हम जी-जान से उनके बचाव और संरक्षण में लगे हुए हैं! मुझे लगता है कि कत्लेआम का यह कार्यक्रम सुबह-शाम तब तक चलता रहेगा जब तक महाराजा के आखिरी मेहमान भरतपुर से रवाना नहीं हो जाते।

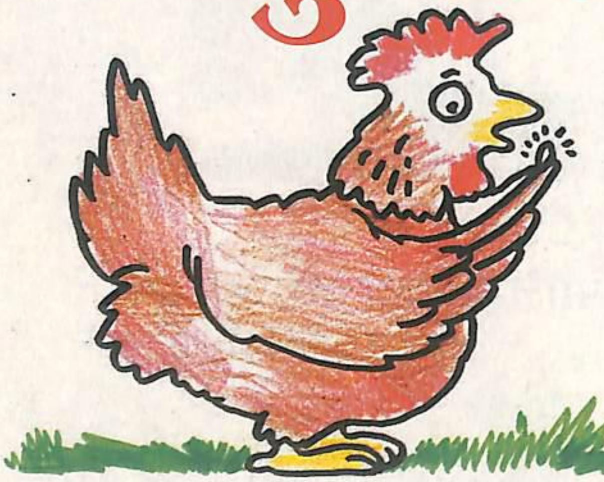
इस कॉन्फ्रेस के मेज़बान और भारतीय प्रतिभागी होने के नाते हमारे लिए यह डूब मरने की सी स्थिति थी। उपस्थित लोगों को इस विरोधाभास के बारे में बतलाना हमारे लिए कितना शर्मनाक रहा होगा कि वो जगह जिसे हम पक्षियों के लिए स्वर्ग कहते आए हैं वहीं उनका इस बेरहमी से शिकार हो!

मैं जानता हूँ कि महाराजा ने भारतीय यूनियन (या इसके लिए जो भी सही शब्द है) के साथ "स्वीकृति की संधि" में एक खास धारा जुड़वाई थी कि केवल उनको और उनके मेहमानों को ही झील और उसके आसपास शिकार करने के अधिकार हों। सालों तक मैंने और मेरे जैसे कई देशी-विदेशी संरक्षणवादियों ने महाराजा को मनाने की कोशिश की है कि वे खुद ही शिकार छोड़ने की पहल करें। उन्होंने हर बार हमारे सुझाव पर बड़ी कड़ुवाहट से कहा है कि शिकार छोड़ने की बजाय वे इस अभयारण्य को ही बरबाद होते देखना ज़्यादा पसन्द करेंगे। यह एक ऐसी खास सुविधा है जिसे जल्द-से-जल्द गैर-ज़िम्मेदाराना हाथों से लिया जाए तो शायद कुछ ही लोगों को नाराज़गी होगी। वह भी केवलादेव घाना अभ्यारण्य के मामले में जिसे आपके पिता के भरपूर सहयोग से हम जैसे लोग अभी तक कई सारी मुश्किलातों से बचाते आए हैं।

सालिम अली

13 दिसम्बर 1969

छोटी लाल मुर्गी



पुरानी बात है। एक छोटी लाल मुर्गी थी। वो एक खेत में रहती थी। अपना अनाज वो खुद ही उगाती थी। एक दिन लाल मुर्गी को गेहूँ का एक दाना मिला। उसने सोचा, चलो, मैं इसे बो दूँ। इससे मुझे खाने को कुछ अनाज मिल जाएगा।

"इस गेहूँ को बोने में कौन मेरी मदद करेगा?" लाल मुर्गी ने पूछा।

"मैं नहीं," बत्तख ने कहा, "पर मैं तुम्हें कॉफी के कुछ पौधे बेच सकती हूँ। अगर तुम गेहूँ की बजाय कॉफी उगाओगी तो तुम्हें कहीं ज़्यादा आमदनी होगी।"

"मैं नहीं," सुअर ने कहा, "पर जब कॉफी की फसल तैयार होगी तो मैं उसे ज़रूर खरीद लूँगा।"

"मैं नहीं," चूहे ने कहा, "तुम्हें कॉफी की फसल बोने के लिए पैसा चाहिए होगा। वो मैं तुम्हें उधार दे सकता हूँ।"

छोटी लाल मुर्गी ने यह सब सुनकर तय किया कि वो अपने खेत में गेहूँ की बजाय कॉफी बोएगी।

"कॉफी बोने में कौन मेरी मदद करेगा?" छोटी लाल मुर्गी ने पूछा।

"मैं नहीं," बत्तख ने कहा, "पर मैं अच्छी कॉफी उगाने के लिए तुम्हें खाद बेच सकती हूँ।"

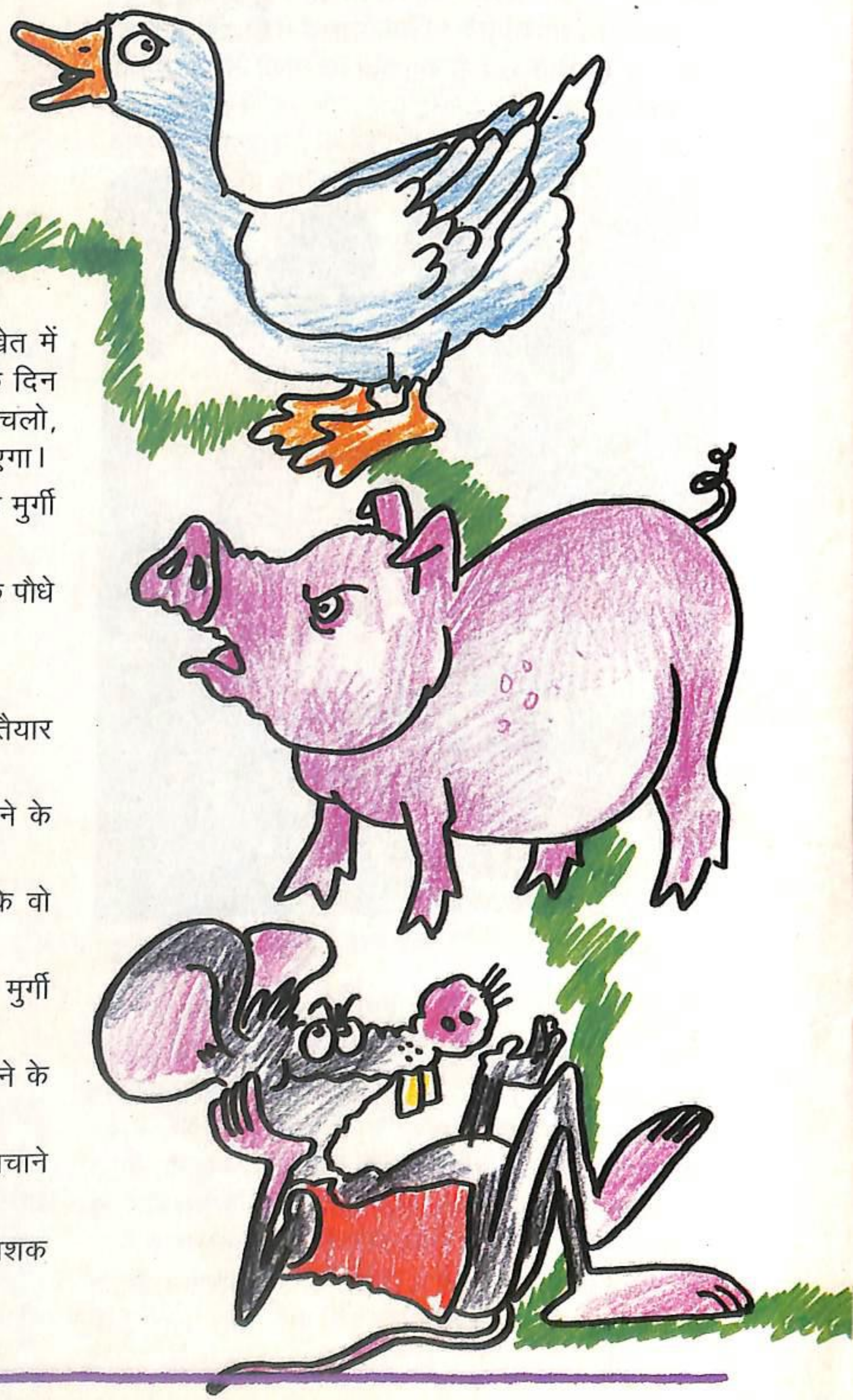
"मैं नहीं," सुअर ने कहा, "पर मैं फसल को कीड़ों से बचाने के लिए तुम्हें कीटनाशक बेच सकता हूँ।"

"मैं नहीं," चूहे ने कहा, "पर मैं तुम्हें खाद और कीटनाशक खरीदने के लिए कर्ज़ दे सकता हूँ।"

छोटी लाल मुर्गी ने बहुत मेहनत-मशक्कत की। खेत में खाद डाली और कॉफी के पौधे पर कीटनाशक छिड़का। इसमें बहुत खर्चा हुआ। गेहूँ उगाने में तो इससे बहुत कम पैसे लगते। पर अब वो उम्मीद लगाए रही कि कॉफी की फसल उसे बहुत मुनाफा देगी।

तब तक कॉफी की फसल पक कर तैयार हो गई।

"कॉफी बेचने में कौन मेरी मदद करेगा?" लाल मुर्गी ने पूछा।



"मैं नहीं," बत्तख ने कहा, "पर कॉफी को भूनने और उसे पैकिट-बन्द करने में तुम्हें मेरी फैक्ट्री की ज़रूरत होगी।"

"मैं नहीं," सुअर ने कहा, "क्योंकि अब हर कोई कॉफी उगा रहा है इसलिए कॉफी के दाम एकदम गिर गए हैं।"

"मैं नहीं," चूहे ने कहा, "पर अब तुम्हें मेरा पूरा कर्ज़ चुकाना होगा।"

अब छोटी लाल मुर्गी को समझ आया कि उसने गेहूँ की बजाय कॉफी बोकर कितनी बड़ी गलती की थी। पर अब तक वो कर्ज़ में डूब चुकी थी और उसके पास खाने को एक दाना तक न था।

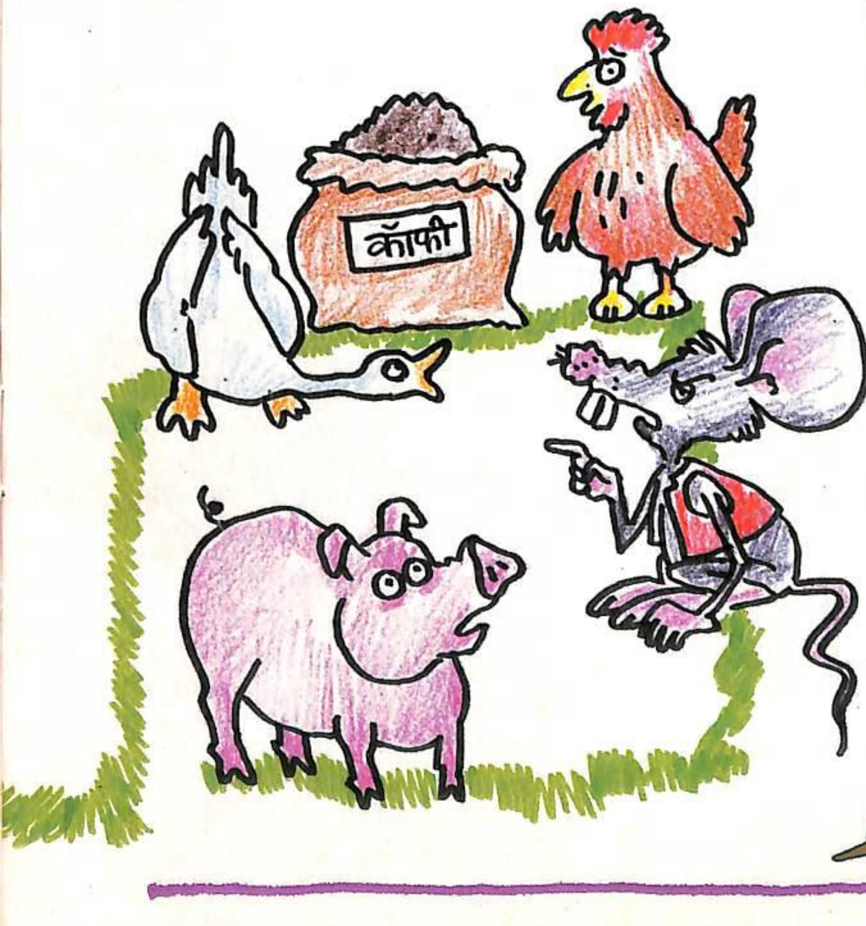
"खाना तलाशने में कौन मेरी मदद करेगा?" छोटी लाल मुर्गी ने पूछा।

"मैं नहीं," बत्तख ने कहा, "तुम्हारे पास खाना खरीदने के लिए एक धेला तक नहीं है?"

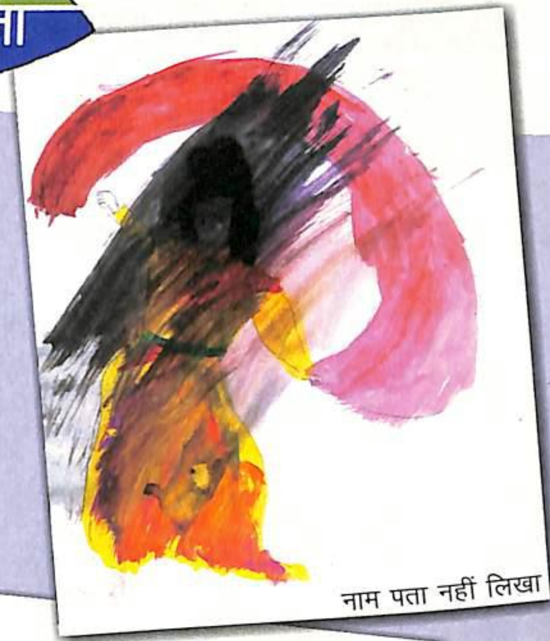
"मैं नहीं," सुअर ने कहा, "जब से सब लोगों ने कॉफी उगाना शुरू किया है तब से अनाज की बहुत किल्लत हो गई है।"

"मैं नहीं," चूहे ने कहा, "पर तुम्हारे ऊपर जो उधार है उसके बदले में मैं तुम्हारा खेत ले लूँगा। मैं शायद तुम्हें खेत पर रहने की इजाज़त दे दूँ पर इसके बदले तुम्हें बस मेरे लिए ही काम करना होगा।"

अनुवादः अरविंद गुप्ता, साभारः यूनीसेफ



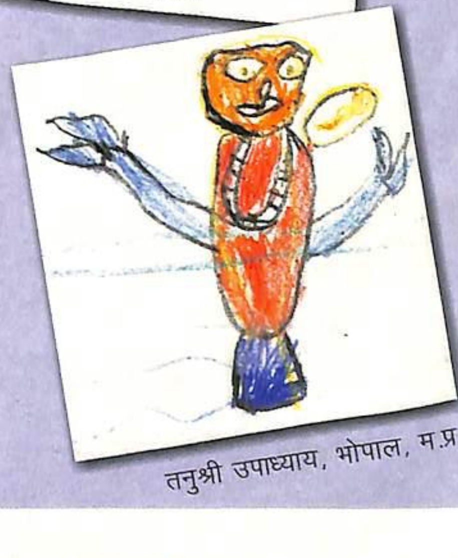
मेरा पन्ना



नाम पता नहीं लिखा



पी. अनन्या, दूसरी, ग्वालियर, म.प्र.



तनुश्री उपाध्याय, भोपाल, म.प्र

दिलीप चिंचालकर

अमृता शेरगिल

फुलझड़ी की तरह रोशनी कर गई

लगभग सौ साल पुरानी बात है। सौ में पाँच ही कम समझो। नए साल का पहला महीना खत्म होने को था। हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट बर्फ की मोटी रज़ाई ओढ़े पड़ी था। डेन्यूब नदी के ऊपर से बहकर आती हवा इतनी सर्द थी कि खिड़कियों के भी दाँत बज रहे थे। इतनी ठण्ड में परीकथाओं-सा सुन्दर यह देश सफेद-सफेद हो रहा था। मगर सरदार उमरावसिंह मजीठिया के घर में खुशियों की गर्माहट थी। दोपहर की प्रार्थना के लिए गिरजे का घण्टा बजा और खबर मिली कि घर में एक परी ने जन्म लिया है।

बुडापेस्ट युरोप के आकर्षक शहरों में से एक है। अपने इतिहास, कला और संस्कृति के ऊँचे दर्जे के कारण उसकी गिनती विएना और पेरिस के साथ हुआ करती थी। ऐसे समय जन्मी बच्ची को उसके माँ-पिता ने देखा। उसके लम्बे, रेशम जैसे बालों को देखा। उसकी बड़ी-बड़ी उत्सुकता भरी आँखों को देखा। रोना तो उसे आता ही नहीं था। घरवालों ने उसे नाम दिया अमृता।

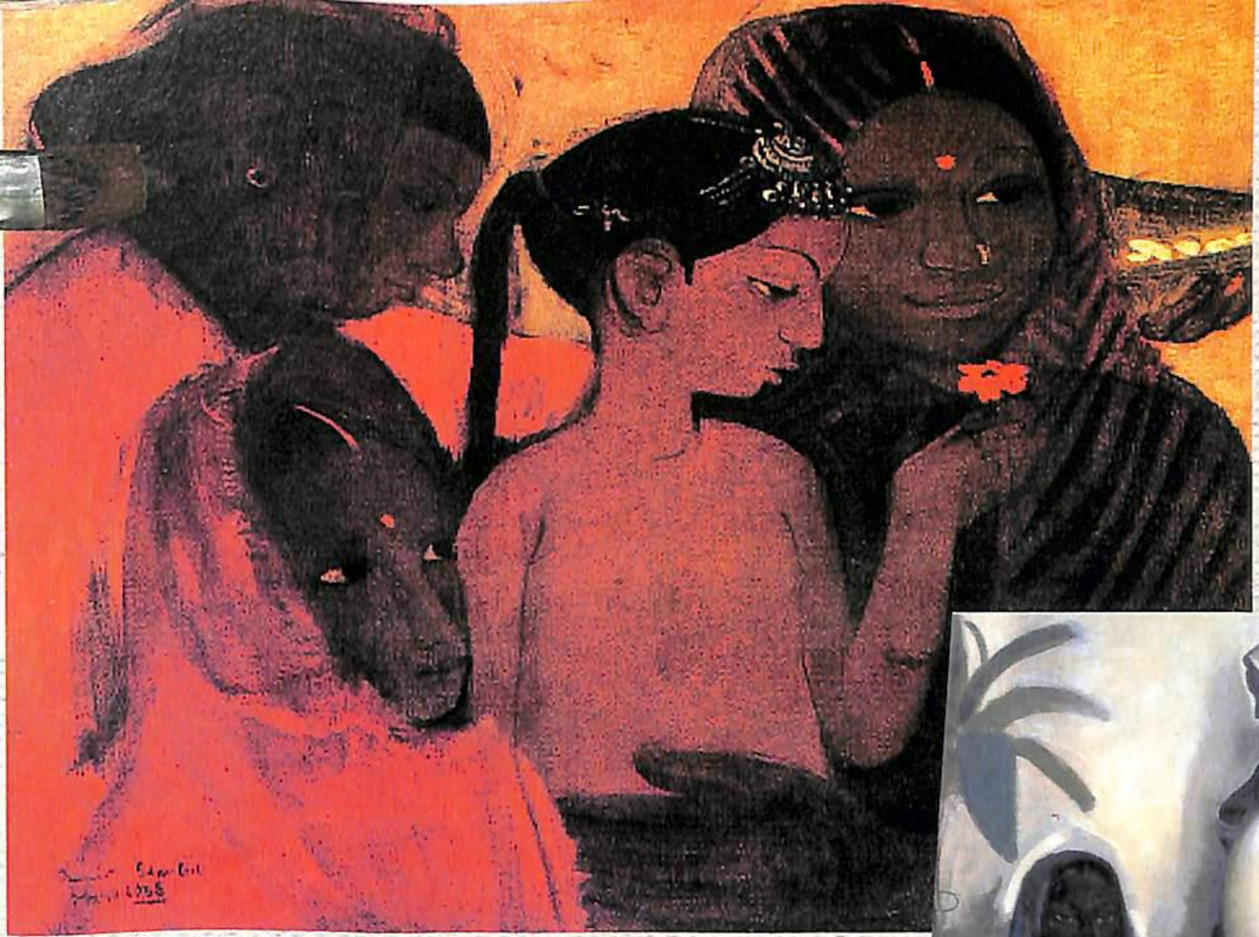
अमृता अभी एक साल से थोड़ी ही बड़ी हुई थी कि उसे एक जीता-जागता खिलौना मिल गया - उसकी छोटी बहन इन्दिरा। उन्हीं दिनों पहला विश्वयुद्ध शुरू हो गया। बच्चियों को लड़ाई की आँच न लगे इसलिए मारी और उमरावसिंह शहर से साठ मील दूर देहात में रहने चले गए। यहाँ डेन्यूब नदी में एक ऐसा ज़बरदस्त मोड़ था कि पूरे इलाके का नाम डेन्यूबबेण्ड पड़ गया था। आसपास पहाड़ियाँ थीं। जंगल थे। वहाँ बसा था दूनाहरस्ती गाँव। सरदार साहब जब घूमने निकलते तो उनके साथ अमृता, इन्दिरा और एक बड़ा-सा सफेद कुट्टया (हंगेरियाई भाषा में कुट्टया का अर्थ होता है कुत्ता) होता।

अमृता को प्रकृति की सुन्दरता से बड़ा लगाव था। पेड़-पौधों की खूबसूरती, फूलों के सुर्ख रंग और नदी-पहाड़ों के बीच की ढलानों को देखकर वह बार-बार ठिठक जाती। वह पाँच साल की ही थी कि वॉटर कलर से चित्र बनाने लगी। माँ जो कहानियाँ सुनातीं अमृता उन्हीं पर चित्र बना देती। अमृता किसी स्कूल में नहीं गई। एक शिक्षक घर पर आकर उसे अंकगणित, इतिहास और भूगोल पढ़ाता था। इतिहास तो उसे इतना अच्छा लगता कि समय मिलते ही वह क्रेयॉन या वॉटर कलर से इतिहास की घटनाओं के चित्र बनाने लगती। भाषाएँ भी वह चलते-बोलते सीख लेती थी। अमृता के मामा इर्विन बख्ताई भारत के जाने-माने जानकार थे। उमरावसिंह के कहने पर इर्विन मामा ने गाँधीजी के भाषणों का एक संग्रह तैयार किया था। अमृता का रुझान देखकर मामा ने ही शुरुआत में उसे चित्रकारी सिखाई थी।

अमृता अपने आप में गुमसुम रहने वाली लड़की थी। ऐसे बच्चे अक्सर चुपचाप अपने आसपास की चीज़ों को ध्यान से देखते रहते हैं। इससे उनके अन्दर छुपी प्रतिभा निखरती जाती है। अमृता पर उसकी माँ मारी एंतोएनेन की सुनाई परीकथाओं और लोकगीतों का खासा असर पड़ा था। हंगरी के गाँव, गाँववाले, महल, ज़मींदारों की कोठियाँ अमृता के मन में बस गई थीं। किसानों के लम्बे



अमृता शेरगिल (1913-1941)



आदिवासी महिला (1938)



दो महिलाएँ

लबादों पर चटख रंगों से की गई कढ़ाई अमृता को खूब सुहाती। ऐसे कपड़े पहने हुए अमृता और इन्दिरा की तस्वीर भी है कहीं। इसमें दोनों बहनें एकदम जिप्सी बजारिनें लगती हैं। अमृता सुन्दर दिखने के लिए सजग रहती थी। शायद इसी कारण अपनी छोटी बहन से उसे थोड़ी ईर्ष्या भी रहती थी। क्रिसमस का एक किस्सा अमृता के सात साल के होने के पहले का है। सन् 1920 के बड़े दिन की बात है। माँ ने घर में एक दावत दी थी। मेहमानों में मानसिक रोगों की एक मशहूर डॉक्टर डॉ. उझेल्पी भी थीं। पार्टी चलते-चलते ही डॉक्टर ने अमृता की एक बड़ी कठिन परीक्षा ले डाली। अमृता पसीने से नहा गई। बाद में डॉक्टर ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि इस लड़की की प्रतिभा असामान्य है। सावधानी बरतना ज़रूरी है क्योंकि उस पर ऐसे प्रभाव पड़ सकते हैं जो आगे चलकर डारावने हो सकते हैं। बस, अगले ही साल माता-पिता अमृता को लेकर भारत आ गए।

अमृता के पिता सरदार उमरावसिंह बड़े सौम्य व्यक्ति थे। कभी-कभी किसी छोटे रेस्त्राँ में बैठकर वे भारतीय तत्वज्ञान और हिन्दू धर्म पर बातचीत करते थे। उनके एक और दोस्त प्रोफेसर सांगेर केगर अक्सर उनके घर आकर अमीर खुसरो की रुबाइयाँ गाते थे। गोरखपुर ज़िले में उनकी जमींदारी थी। अमृता की माँ का परिवार भी कोई कम सम्पन्न नहीं था। धन-दौलत और कला-संस्कार दोनों में जब उसे लगा कि अमृता चित्रकला को शौकिया तौर पर नहीं, गम्भीरता से लेती है तो वे उसे पढ़ाने के लिए इटली और फ्राँस ले गईं।

युरोप में अमृता ने प्रोफेसर प्येरवेलाँ और प्रोफेसर ल्यूसिए सिमों से चित्रकला सीखी। चित्रकला की दुनिया में ये दोनों जानी-मानी हस्तियाँ थे। वे दोनों अमृता से बहुत प्रभावित हुए। सिमों ने तो यह तक कह डाला कि एक दिन मुझे इस बात पर गर्व होगा कि तुम मेरी छात्रा रही हो। अमृता के चित्र भी उनकी प्रशंसा पर खरे उतरने वाले रहे। उनका प्रदर्शन पेरिस की प्रसिद्ध आर्ट गैलरी में होता रहा। युरोप में रहते हुए अमृता ने वहाँ के चित्रकारों के काम बड़ी बारीकी से देखे और समझे। उसे लगा कि वहाँ रहकर वह कुछ अनोखा नहीं कर पाएगी। अमृता ने कहा कि मैं हिन्दुस्तान का खून हूँ और हिन्दुस्तान की आत्मा कैनवास पर उतारकर ही सन्तुष्ट हो सकूँगी। युरोप तो पिकासो, मनीस और ब्राक का है। मेरा तो केवल भारत है। और 1934 में वह सचमुच भारत आ गई।

उमरावसिंह नहीं चाहते थे कि उनकी मनमौजी बिटिया भारत आए। क्योंकि हंगरी के रहन-सहन और भारत के तौर-तरीकों में काफी फर्क था। अमृता सिर्फ चित्रकार नहीं बनना चाहती थी। चित्रकारी के रास्ते वह कुछ अनोखा करना चाहती थी और उसकी सम्भावना उसे भारत में ही दिखाई दी। यहाँ के दीन-हीन, देसी लोगों को अमृता से पहले

किसी ने कैनवास पर जगह नहीं दी थी। अमृता के चित्रों ने भारत में खूब खलबली मचाई। अच्छे तो वे थे ही, उनमें नयापन भी था। इन्हीं में अमृता को अपनी शैली मिल गई।

अमृता खुर्राट भी बहुत थी। उसने अपनी चित्रकारी का एक बहुत ऊँचा दर्जा तय कर रखा था। उसने सालाना प्रदर्शनी के लिए शिमला की आर्ट सोसायटी को अपने चित्र भेजे। उन्होंने चित्रों में से पाँच रखकर पाँच लौटा दिए। अमृता ने इन लौटे चित्रों को पेरिस भेज दिया। यहाँ उनमें से एक चित्र स्वीकृत हो गया। इधर शिमला वालों ने अमृता के एक चित्र पर उसे



ऊँट (1941)

महाराज फरीदकोट पुरस्कार दिया तो अमृता ने उसे लौटा दिया। साथ में यह भी लिखा कि यह पुरस्कार किसी ऐसे ज़रूरतमन्द चित्रकार को देना जो आपके घिसे-पिटे तरीके से चित्र बनाता हो।

ऐसी ही बात उसने अपने घरवालों के साथ भी की। एक बार वह अपने चाचा का चित्र बना रही थी तो घर के लोगों ने केवल इतना चाहा कि उसे वह सहज रंग और रेखाओं में बना दे। जिससे चाचा का चेहरा पहचाना जा सके। यानी अपने मनमाने तरीके से उसे आड़ा-तिरछा कर उसका मॉडर्न आर्ट न बना दे। अमृता ने परिवार वालों की पसन्द का चित्र बना तो दिया पर अपने पिता से यह भी कह दिया कि देखा, ज़रूरत पड़ी तो वो घटिया चित्र भी बना सकती है।

अमृता खुद काफी रईसी में पली थी मगर उसे अमीर लोगों के तौर-तरीके यानी बेकार में नाक-भौंह सिकोड़ना पसन्द नहीं था। एक जगह अमीर लोगों की पार्टी में खाने की मेज़ पर



हंगेरियाई बाज़ार (1938)

तश्तरी भर मिर्चें सजाकर रखी थीं। मिर्चें सबको ललचा रही थीं लेकिन कोई उन्हें खा नहीं रहा था। इसलिए कि मिर्च तीखी लगने पर आँख-नाक बहने लगेगी और फ़ज़ीहत हो जाएगी। अमृता से रहा न गया। उसने एक बड़ी-सी मिर्च को उठाकर चबा डाला और लोगों से भी खाने का आग्रह करने लगी। मिर्च तो मिर्च थी। अमृता सहित हर खाने वाला सी-सी करने लगा और सभी हँस-हँस कर लोटपोट हो गए। अमृता की इस बेतकल्लुफी से पार्टी में जान आ गई।

सन् 1938 में अमृता फिर हंगरी चली गई और अपने ममेरे भाई डॉ. विक्टर एगॉन से ब्याह कर साल भर में भारत लौट आई। पहले कुछ दिन दोनों शिमला में रहे फिर अपने पिता की रियासत सराया, गोरखपुर में रहे। अमृता को लगा कि शायद लाहौर में विक्टर की डॉक्टरी अच्छी चलेगी इसलिए वे दोनों वहाँ रहने चले गए। नए घर में पहुँचते ही अमृता ने अपने चित्रों की एक प्रदर्शनी तय कर ली। उसका इरादा था कि दर्शकों से उनकी राय जानने के लिए वह भेष बदलकर, चेहरे पर नकली दाढ़ी-मूँछें लगाकर और सिर पर साफा पहनकर एक सरदार की तरह उनसे बातें करेगी। परन्तु ऐसा करने से पहले ही वो बीमार हो गई और तुरत-फुरत चल बसी।

उम्दा चित्रकार और खुश मिजाज़ अमृता ने बहुत छोटी उम्र पाई - दो विश्वयुद्धों, 30 जनवरी 1913 और 5 दिसम्बर 1941 के बीच उसकी दुनिया खत्म हो गई। इतने कम समय का हिसाब लगाए तो बचपन के आठ साल छोड़कर बाकी सारा जीवन उसने घुमक्कड़ी में ही बिता दिया। फिर भी भारत के चित्रकारों में उसका नाम आज भी बहुत ऊँचा है।





जैसे हमारे दिन फिरे वैसे सबके दिन फिरें



"सच कहें तो हमने
सपने में भी नहीं सोचा था
कि कभी हम कोटवारों की पंचायत होगी
वह भी सीधे मुख्यमंत्रीजी के घर।
हमारी दिक्कतों पर खुलकर बात होगी और
तुरत-फुरत फैसले होंगे।
सबसे बड़ी खुशी की बात यह थी कि
उन पर अमल भी फौरन होने लगा।
हमने सुना है कि हमारी जैसी पंचायत,
मजदूरों, मछुआरों और हम्मालों के साथ
और भी लोगों की हुई है।
हम तो कहते हैं कि
जैसे हमारे दिन फिरे हैं वैसे सबके फिरें।"

मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान की विभिन्न वर्गों के लिये पंचायतें-सम्मेलन

1.	महिला पंचायत	30 जुलाई, 2006
2.	किसान पंचायत	30 अगस्त, 2006
3.	आदिवासी पंचायत	6 जनवरी, 2007
4.	वन पंचायत	6 फरवरी, 2007
5.	अनुसूचित जाति पंचायत	6 अप्रैल, 2007
6.	कोटवार पंचायत	22 जून, 2007
7.	लघु उद्यमी पंचायत	29 जून, 2007
8.	खेल पंचायत	29 अगस्त, 2007
9.	शिल्पी एवं कारीगर पंचायत	17 सितम्बर, 2007
10.	खेतिहर श्रमिक सम्मेलन	20, सितम्बर, 2007
11.	किसान महापंचायत (जम्बूरी मैदान)	20 फरवरी, 2008
12.	निःशक्तजन पंचायत	29 अप्रैल, 2008
13.	लोकतंत्र के प्रहरियों (मीसाबंदी) का सम्मेलन एवं सम्मान	25 जून, 2008
14.	सामान्य निर्धन वर्ग सम्मेलन	27 जून, 2008
15.	निर्माण श्रमिकों का राज्य स्तरीय सम्मेलन (जम्बूरी मैदान)	19 अगस्त, 2008
16.	मछुआ पंचायत (जबलपुर)	22 अगस्त, 2008
17.	स्व-सहायता समूहों का सम्मेलन (जम्बूरी मैदान)	9 सितम्बर, 2008
18.	मण्डी हम्माल-तुलावटी पंचायत	23 सितम्बर, 2008
19.	वनग्रामों के कोटवारों का सम्मेलन	24 सितम्बर, 2008

अपनेपन का एहसास सबको

हमारा मध्यप्रदेश

D 67310 दिनांक 27.09.2008
मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

सर्दी की उस शाम मेलाराम के जानवर जंगल से जब वापस आए, तो पता चला, उनमें एक भेड़ और तीन बकरियाँ कम थीं। मेलाराम मरका पठार के जंगल में दोपहर तक अपने पशुओं को चराता रहा था। शाम होने से पहले ही वह घर लौट आया था। उसे वैध जी से अपने बीमार पिता की दवा लेनी थी। उसे मालूम था कि उसके न रहने पर भी, उसके पालतू जानवर घर वापस आ जाएँगे।

मेलाराम को चिन्ता हुई। उसने अपने खोए हुए जानवरों को खूब ढूँढा, लेकिन वे कहीं न मिले। इससे पहले बनवारी, मलथू और श्यामलाल भी अपने जानवर खो चुके थे। पास के रीठी, हर्रई, परतापुर और कुंडम जैसे गाँवों से भी कई पशु गायब हो गए थे। तय था, कोई चालाक चोर जानवरों की चोरी कर रहा था। लेकिन काफी कोशिशों के बाद भी गाँववाले इसका सुराग नहीं लगा पाए थे।

सन् 1834 के दिन थे। देश में अँग्रेज़ों का राज था। मेलाराम की उम्र सोलह साल की थी। एक दिन वह पास की पुलिस चौकी में दूसरे गाँववालों के साथ पहुँचा। दरोगा का नाम अब्दुल रहमान था। वह एक नरम दिल इन्सान था। उसने मेलाराम की शिकायत सुनी और बोला, "तुम सब घर जाओ। पुलिस ज़रूर उस चोर को पकड़ लेगी।"

दरोगा को इससे पहले भी कई और गाँवों से पशुओं के लापता होने की खबरें मिली थीं। उनके हाकिम निक्सन भी इस बाबत जानते थे। उन्हें बतलाया गया था कि पिछले तीन महीनों में करीब तीस जानवर सिवनी ज़िले के उन गाँवों से लापता हो चुके हैं जहाँ मेलाराम का भी ईसापुर नाम का गाँव था। निक्सन ने सिपाहियों की गश्त बढ़ा दी थी, लेकिन जानवर थे कि धड़ल्ले से गायब हो रहे थे।

दिसम्बर के दिन थे। सर्दी खूब थी। उस शाम बारिश का सिलसिला जो शुरू हुआ तो आधी रात के बाद ही खत्म हो पाया। मेलाराम सो रहा था। तभी कुछ आहट पाकर उसकी नींद टूटी। आवाज़ उसके घर के पिछवाड़े से आई थी। वहाँ उसके ढोर बैठे थे। उसे लगा, ज़रूर कोई चोर है। मेलाराम ज़ोर से चिल्लाया, "कौन है?" वह लाठी लेकर बाड़े की तरफ भागा। उसने देखा, वहाँ उसकी एक बकरी गिरी पड़ी थी। उसकी पीठ से खून बह रहा था।

मेलाराम ने यह भी देखा कि बाड़े का दरवाज़ा टूटा हुआ है। दरवाज़ा बाँस और लकड़ी का बना हुआ था। उसकी बल्लियाँ और पटिए ज़मीन पर बिखरे हुए थे। शोर सुनकर दूसरे लोग भी जाग गए। वे लाठियाँ और मशालें ले मेलाराम के घर आ गए। गाँव में डेरा डाले कुछ सिपाही भी उस भीड़ में थे। पुलिस वालों ने देखा कि बारिश से गीली हुई ज़मीन पर किसी के कदमों के निशान थे। निशान बड़े अजीब से थे। मिट्टी पर किसी आदमी के पैरों की छाप तो थी ही, साथ ही उनके पीछे हथेलियों की भी छाप थी। लगता था जानवरों की तरह पीठ उठाकर कोई ऐसा जन्तु मेलाराम के घर से भागा है जो है तो जानवर, मगर जिसके हाथ और पैर किसी आदमी की तरह हैं। ये निशान थोड़ी दूर जाकर मिट गए थे, क्योंकि बरसात के कारण जहाँ-तहाँ पानी भर गया था।

मेजर निक्सन को भी खबर लगी। वे ईसापुर आ गए। उन्होंने उस जन्तु को खोजना शुरू कर दिया। उनके साथ गाँववाले भी थे। गाँव के बाहर एक टूटा हुआ मन्दिर था। वहाँ चौबीसों घण्टे सन्नाटा रहता था। उसके आसपास खूब घना जंगल था। दिन के वक्त भी वहाँ से निकलने में डर लगता था।

"हमें बड़ी सावधानी बरतनी है," मेजर निक्सन बोले, "हो सकता है, चोरों की तादाद ज़्यादा हो। उनके पास हथियार भी हो सकते हैं।"

मेलाराम का कुत्ता भी उसके साथ था। उसने ज़ोर-ज़ोर से भौंकना शुरू कर दिया। देखादेखी पुलिस के कुत्ते भी भौंकने लगे। वे एकाएक मन्दिर के दरवाज़े पर पहुँच गए। दरवाज़ा टूटा हुआ था। भीतर कोई नहीं था। फिर भी लगा जैसे कुत्तों

कही-सुनी ....डॉ. कैलाश नारद

मेलाराम ने खोजा मोगली



को किसी के होने की टोह मिल गई थी।

"आगे बढ़ो।" निक्सन साहब ने आदेश दिया।

मशालें लेकर सिपाही मन्दिर में घुस गए। मेलाराम और उसका कुत्ता उनके साथ थे। निक्सन साहब को मन्दिर के उत्तरी भाग में टूटी हुई सीढ़ियाँ दिखीं। लगता था नीचे कोई तहखाना था। सीढ़ियाँ उसी तहखाने में जाती थीं।

तभी, कोई गुर्राया। सिपाही सहम गए। लेकिन मेलाराम साहसी था।

"चल, शेरा," उसने अपने कुत्ते से कहा, "नीचे चलते हैं।"

तभी, कोई उसके कुत्ते पर झपटा।

निक्सन साहब और दूसरे गाँववालों ने देखा, कुत्ते पर झपटनेवाला प्राणी अजीब-से आकार का था। उसका शरीर तो आदमी का था, लेकिन हाव-भाव जानवर जैसे थे। तहखाने से बदबू आ रही थी।

जल्दी ही उस प्राणी को काबू में कर लिया गया। जिस तहखाने में वह रहता था वहाँ बहुत-सी हड्डियाँ पड़ी हुई थीं।

मेजर निक्सन को सारा मामला समझ में आ गया। उन्होंने कहा, "लगता है, बचपन में इसे किसी भेड़िए ने चुरा लिया था। उसकी संगत में रहकर यह खुद भेड़िया बन गया है और भेड़ियों की तरह शिकार करने लगा है।"

"तो यही है हमारे जानवरों का चोर!" गाँववाले बोले।

"हाँ।" निक्सन साहब ने जवाब दिया, "आज के बाद किसी पशु की चोरी नहीं होगी।" फिर उन्होंने मेलाराम की पीठ थपथपाई। बोले, "इस लड़के की हिम्मत के कारण इस नर भेड़िए का पता चला।"

विलियम स्लीमैन का नाम ठगों का दमन करने के कारण पूरी दुनिया में मशहूर है। वे उन दिनों जबलपुर में प्रशासक थे। उस नर भेड़िए को उनके पास लाया गया। स्लीमैन ने अपनी पुस्तक *द रैम्बल्स एंड रिकलैक्शन्स ऑफ एन इंडियन ऑफिशियल* में यह पूरा किस्सा लिखा है। गाँववालों ने उस नर-भेड़िए का नाम "बाल भगवान" रखा। प्रसिद्ध साहित्यकार रुड्यॉर्ड किपलिंग जब भारत आए, तो उन्होंने विलियम स्लीमैन की यह पुस्तक पढ़ी। उन दिनों वे अपनी प्रसिद्ध किताब *द जंगल बुक* लिख रहे थे। "बाल भगवान" की याद उन्हें थी। उसी को उन्होंने *द जंगल बुक* में मोगली नाम दिया।

द जंगल बुक के मोगली पर अब तक करीबन पच्चीस फिल्में बन चुकी हैं। मध्यप्रदेश सरकार ने सिवनी ज़िले में बच्चों का एक पॉर्क बनवाया है। इसे "मोगली पार्क" नाम दिया है।



चित्रः अतनु राय

बाँस

बाँस पक गए हैं
उन्हें छप्पर पर बिछा दो
खपरे छा दो।

एक टोकनी बुन लो
अपने मन की चीज़ें भरो
कचरा भरकर फेंको।
एक काँवर बना लो
कन्धों पर रखो और चल दो
पुल बनाकर पार हो जाओ।

इससे पहले कि
बाँस बेसुरे हो जाएँ
और जल मरें
उनकी गाँठों को काट दो
छोटी-छोटी बाँसुरियाँ बना लो
पूरे जंगल में सुर भरो।

शब्द

शब्द
बेस्वाद होते हैं
उन पर
मक्खी तक नहीं बैठती
गुड़ शब्द पर भी नहीं
उड़ जाती है
गुड़ की खोज में

ध्रुव शुक्ल





हमारी नानी जी

टी.वी. की शौकीन हमारी नानी जी
खाती हैं नमकीन हमारी नानी जी

नाना जी परतंत्र दिखाई देते हैं
रहती हैं स्वाधीन हमारी नानी जी

तेंदुलकर छक्का मारे चाहे चौका
पूरी तिक्के तीन हमारी नानी जी

बिन साबुन पानी जाड़े के मौसम में
होती ड्राई क्लीन हमारी नानी जी

गलत बात सुनकर गुस्से में हो जातीं
तेज़ धूप में टीन हमारी नानी जी

चढ़ा पेट पर मिठ्ठू तबला बजा रहा
ताक धिनाधिन धीन हमारी नानी जी

जितना नया-नया नाती है गोदी में
उतनी हैं प्राचीन हमारी नानी जी

गली मुहल्ले नुक्कड़ की अफवाहों पर
करतीं नहीं यकीन हमारी नानीजी

यश मालवीय





बब्बू-झब्बू

घोड़ा लाए बब्बू जी,
आ के बोले झब्बू जी,
इस घोड़े में नहीं चढेंगे
ये घोड़ा है लद्दू जी!
घोड़ा अच्छा मिला नहीं,
बब्बू बोले गिला नहीं।

आलू लाए बब्बू जी,
आ के बोले झब्बू जी,
आलू-वालू नहीं चलेगा,
हम खाएँगे कद्दू जी
कद्दू अच्छा मिला नहीं
बब्बू बोले गिला नहीं।

चिड़िया लाए बब्बू जी,
आ के बोले झब्बू जी,
ये तो बस चीं-चीं करती है
हमें चाहिए पट्टू जी।
पट्टू अच्छा मिला नहीं
बब्बू बोले गिला नहीं

टॉफी लाए बब्बू जी
आ के बोले झब्बू जी
चीज़ यही भाती है हमको
क्या करना है लड्डू जी
झूम रहे हैं बब्बू जी
नाच रहे है झब्बू जी

हरीश निगम









दो गाँव

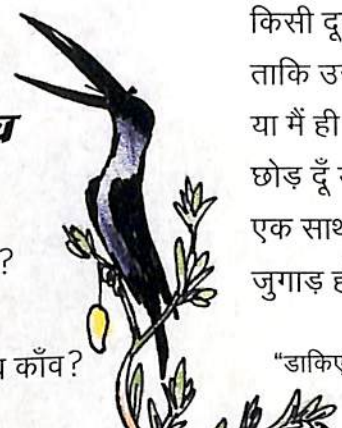
हम दो अलग-अलग गाँव हैं
बैलगाड़ी और धूप नाम के

पर यूँ ही कभी
हमारी फसलों की खुशबू
इकट्ठी रसोई में चली आती है
हम दो पास-पास के गाँव हैं
बैलगाड़ी और धूप नाम के

कभी धूप बैलगाड़ी में बैठती है
कभी बैलगाड़ी धूप में।

तेजी ग्रोवर

फिर क्यों करता काँव काँव



कव्वे तेरे कितने पाँव?
भैया मेरे दो ही पाँव
फिर क्यों करता काँव काँव?

कव्वे तेरे कितने गाँव?
भैया नीम मेरा इक गाँव
फिर क्यों करता काँव काँव?

तुझे सुहाती किसकी छाँव?
बैठा हूँ जिस आम की छाँव
फिर क्यों करता काँव काँव?

कव्वे चलना है गुड़गाँव?
नहीं, मुझे जाना चटगाँव
फिर क्यों करता काँव काँव?

प्रभात

डाकिए से कहो

डाकिए से कहो
रोज़ कम से कम
एक चिट्ठी
ज़रूर डाला करे

उसकी साइकिल की आवाज़
दूर से ही सुनाई दे जाती है
धीरे-धीरे पास आती है
लगता है अब खुला गेट
अब सरके दरवाज़े के नीचे से
पीले या नीले कागज़

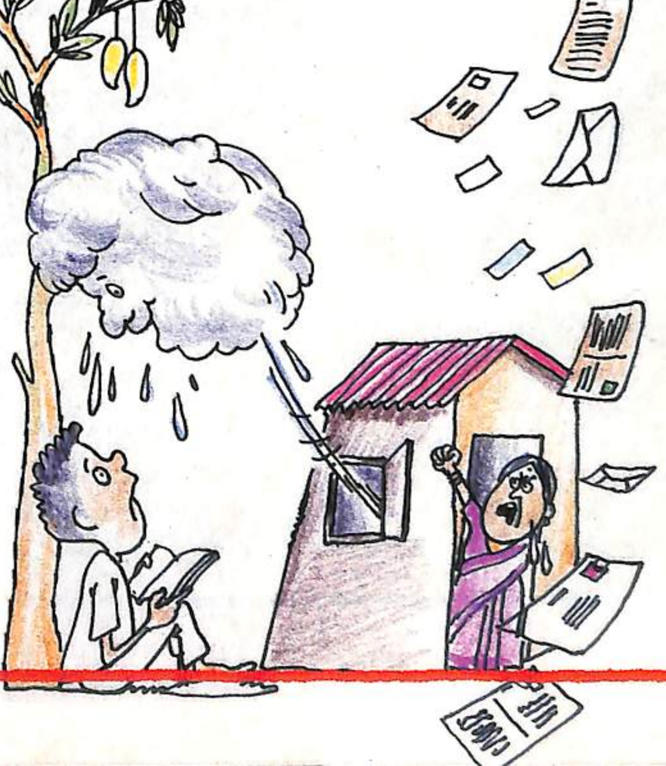
सम्भावनाओं से भरा हुआ
तो अब
बस डाकिया ही है

मेरे किसी दोस्त से कहो
किसी दूसरे शहर में चला जाए
ताकि उसको चिट्ठी लिख सकूँ मैं
या मैं ही
छोड़ दूँ यह शहर
एक साथ ढेरों चिट्ठियों का
जुगाड़ हो जाए

"डाकिए से कहो" कविता का एक अंश

राजीव सभरवाल





बच्चा-बादल

बिछुड़ गया
बादल का बच्चा
नभ में घूम रहा था,
ऊँचे-ऊँचे
शिखर बर्फ के
उनको चूम रहा था।

सोचा, "नीचे उतर किसी के
घर में घुस जाऊँ,
बच्चे मुझ जैसे भी होंगे
उनसे ही मिल आऊँ।"



धीरे-धीरे
उतरा नीचे
खिड़की पर मँडराया,
खुली देख खिड़की
चुपके से भीतर घुस आया।

घुसते ही अन्दर हर्षित जी
बुरी तरह से भीगे,
लगे छींकने ज़ोर-ज़ोर से
आँखें मींचे-मींचे

घबराकर बादल का बच्चा
घर से बाहर भागा,
ढूँढ रहे थे मम्मी-पापा
बोले, "ऊपर आ जा।"

बात नहीं हो पाई कुछ भी
वह उदास था ऐसा,
छूट गया ज्यों
पीछे कोई
बिल्कुल उसके जैसा।

रमेशचंद्र पंत

एक नोट में क्या-क्या देखा?



रेक्स डी रोज़ारियो

"ये आइस्क्रीम किते की है?" "कैंडी पाँच की, कप दस का।" अब तुम्हें तय करना है - पाँच रुपए दोगे तो उतनी कीमत वाली आइसक्रीम मिलेगी और दस दोगे तो उतनी कीमत का कप मिलेगा। तुम्हारी गुल्लक में कितना पैसा है? कहाँ-कहाँ से इकट्ठा किया? राखी, जन्मदिन में मिला या ईदी मिली। इस बार "हाथ के मैल" यानी पैसे पर नज़रें गड़ाकर देखते हैं।

पैसा ये कैसा

पैसा देकर चीज़ लेना तो तभी हो सका जब पैसा बना। जब पैसा नहीं था तब लोग किसी एक चीज़ को देकर कोई दूसरी चीज़ ले लेते थे। जैसे अपने दोस्त को दस कँचे दो और उससे अपने पसन्दीदा हीरो की पाँच तस्वीरें ले लो। लेकिन चीज़ों का ऐसा लेन-देन आसान नहीं था। खासतौर पर तब जब चीज़ें बड़ी हों। सौदों को आसान बनाने के लिए ही पैसे का आविष्कार हुआ।

यानी, पैसा एक माध्यम है जो लेन-देन, खरीद-फरोख्त को आसान कर देता है। पैसे का मूल्य लोग तय करते हैं, और बाज़ार भी। पैसे का अपना कोई मूल्य नहीं होता है।

वस्तुओं का मूल्य भी बाज़ार ही तय करता है। किसी वस्तु का मूल्य कई बातों पर निर्भर करता है। जैसे, वस्तु बनाने में कितना कच्चा माल लगा, कितनी मेहनत लगी, बाज़ार में उस वस्तु को खरीदने वालों की संख्या कितनी है आदि।

पुराने ज़माने में सिक्के अलग-अलग चीज़ों के बने होते थे। जैसे, नमक या चाँदी-सोना, जो मूल्यवान हो। हाँ, एक ज़माने में नमक बहुत कीमती माना जाता था।

नोटों पर भाषा

1953 में पहली बार नोटों में हिन्दी भाषा का प्रयोग किया गया। आज, हिन्दी व अँग्रेज़ी के अलावा नोटों पर रुपए का मूल्य 15 भारतीय भाषाओं में लिखा होता है।



असमिया
बांग्ला
गुजराती
कन्नड़
कश्मीरी
कोंकणी
मलयालम
मराठी
नेपाली
उड़िया
पंजाबी
संस्कृत
तमिल
तेलुगु
उर्दू

मेरा पन्ना



तरुण-बबलेश, होशंगाबाद, म.प्र.

आजकल कागज़ के नोट छपते हैं और ताँबे, काँसे या स्टील के सिक्के बनते हैं। देश के राष्ट्रीय बैंक और सरकार मिलकर इन सिक्कों का मूल्य तय करते हैं।

भारत का अधिकृत राष्ट्रीय बैंक रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया है। रिज़र्व बैंक यह भी तय करता है कि साल में कितने नोट छपना है।

आजकल के नोट और सिक्के

भारत के नोटों को रुपया कहते हैं और सिक्कों को पैसा। एक रुपया 100 पैसे के बराबर है। हमारे देश में 1000, 500, 100, 50, 20, 10 और 5 रुपए के नोट छपते हैं। पहले 1 और 2 रुपए के भी नोट छपते थे पर आजकल इनकी छपाई बन्द हो गई है। 5, 2 और 1 रुपए के नोट भी हैं और सिक्के भी। इनके अलावा 50, 25, 20 और 10 पैसे के भी सिक्के हैं।

कौन बनाता है नोट?

सरकार और रिज़र्व बैंक नोट व सिक्कों का डिज़ाइन तय करते हैं। हाँ, डिज़ाइन में ही कहीं डिज़ाइनर अपने हस्ताक्षर भी कर देता है। जिसे ढूँढना बड़ा मुश्किल काम है। डिज़ाइन यानी नोट, सिक्के में क्या-क्या होगा, क्यों होगा, इसमें कब क्या बदलाव किए जाएँगे आदि। जैसे पहले चौकोर सिक्के भी बनते थे (मसलन पाँच पैसे का सिक्का) पर आजकल सभी सिक्के गोल ही होते हैं।

आगे बढ़ने से पहले आजकल के कुछ सिक्के देखते चलते हैं



मूल्यः 1 रुपए
धातुः स्टेनलेस स्टील
वज़नः 4.85 ग्राम
व्यासः 25 मि.मी.



मूल्यः 2 रुपए
धातुः काँसा/निकल
वज़नः 6 ग्राम
व्यासः 26 मि.मी.



मूल्यः 5 रुपए
व्यासः 23 मि.मी.
धातुः काँसा/निकल
वज़नः 9 ग्राम



मूल्यः 50 पैसे
धातुः स्टेनलेस स्टील
वज़नः 3.79 ग्राम
व्यासः 16 मि.मी.



मूल्यः 25 पैसे
धातुः स्टेनलेस स्टील
वज़नः 2 ग्राम
व्यासः 22 मि.मी.



मूल्यः 10 पैसे
धातुः स्टेनलेस स्टील
वज़नः 2 ग्राम
व्यासः 16 मि.मी.

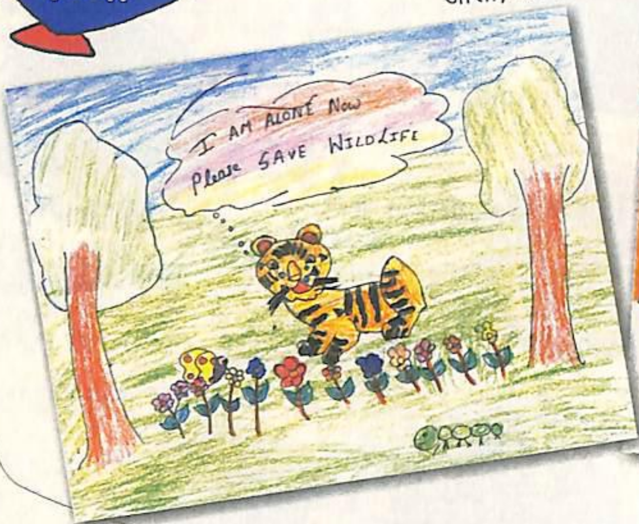
दिन में जाने कितनी बार हम नोट को छूते होंगे, उन्हें देखते होंगे, उसको लेते-देते होंगे। पर कभी गौर किया है कितना कुछ होता है इन नोटों में। नहीं किया तो अब करते हैं। शुरुआत आजकल के नोटों से...

आजकल छप रहे सभी नोटों में महात्मा गाँधी की तस्वीर ज़रूर होती है। महात्मा गाँधी वाली सीरीज़ 1996 में शुरू हुई थी। इसमें कई ऐसी चीज़ें जोड़ दी गई हैं ताकि नकली नोट बनाना आसान न रहे। इनका ज़िक्र आगे किया गया है। आजकल के कुछ नोट देखोः



मेरा पन्ना

आशी, चौथी



तरुण-बबलेश, होशंगाबाद, म.प्र.

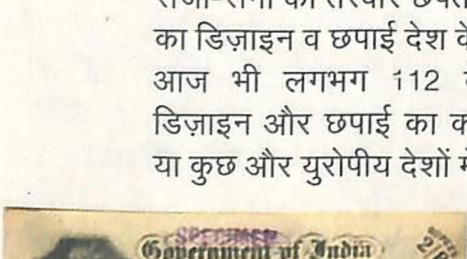


अधिकार, पहचान व राष्ट्रीय गौरव के प्रतीक



यह तो सभी जानते-समझते हैं कि नोटों पर जो भी चिन्ह नज़र आते हैं, वे देश के सामाजिक व सांस्कृतिक प्रतीक होते हैं। इसीलिए भारत में जब अँग्रेज़ों का राज़ था तब नोटों पर इंग्लैण्ड के राजा-रानी की तस्वीर छपती थी। उस वक्त नोट का डिज़ाइन व छपाई देश के बाहर ही होती थी। आज भी लगभग 112 देशों के नोटों की डिज़ाइन और छपाई का काम जर्मनी, इंग्लैण्ड या कुछ और युरोपीय देशों में होता है।

ब्रिटिश काल के दो नोट



दो रुपए आठ आना

एक रुपया



जब देश स्वतंत्र हो गया तो नोटों पर ब्रिटेन के राजा की तस्वीर की जगह स्वतंत्र भारत के जाने-माने चिन्ह या प्रतीक शामिल करना ज़रूरी हो गया। इरादा था महात्मा गाँधी का चित्र छापने का। पर अन्त में सरकार ने अशोक स्तम्भ के त्रिमुखी सिंह को चुन लिया।

सरकार ने देश के प्रसिद्ध व दर्शनीय स्थानों की तस्वीरें छापना भी शुरू किया ताकि देश की पहचान बने।

पाँच हज़ार रुपए, गेटवे ऑफ इण्डिया



एक हज़ार रुपए, तंजावूर मन्दिर



ताकि न बन सकें नकली नोट

नोट की डिज़ाइन बनाते वक्त इसका खास ख्याल रखा जाता है कि कहीं लोग नोटों की नकल न करने लगें। इसके लिए काफी सावधानियाँ बरती गई हैं। जैसे:

1000 रुपए का नोट



1. किसी को भी लग सकता है कि जाने क्यों नोट में इतनी सारी खाली जगह छोड़ रखी है। असल में यहाँ गाँधी जी का जल चिन्ह या वॉटरमार्क है। इसे देखने के लिए नोट को उठाकर रोशनी में देखो। गाँधी जी की तस्वीर दिखेगी। महात्मा गाँधी सीरीज़ में गाँधी जी का वॉटरमार्क होता है।

9. 500 और 1000 रुपए के नोटों के बीच में 500 व 1000 अंक बेहद महँगी और खास स्याही में छपता है। इस पर प्रकाश पड़े तो इसका रंग बदल जाता है। इन नोटों को लिटाकर देखो तो ये अंक हरे दिखते हैं और तिरछे रखकर देखो तो नीले नज़र आते हैं।

8. महात्मा गाँधी की तस्वीर तथा खड़ी पट्टी के बीच महीन छपाई होती है। 10 रुपए के नोट में यहाँ "RBI" लिखा होता है। 20 और अधिक मूल्य के नोट में इसका मूल्य लिखा रहता है। लेंस की मदद से इसे देखा जा सकता है।

2. वॉटरमार्क के बगल में छोटा-सा फूल बना होता है। यह नोट के दोनों तरफ छपा होता है। रोशनी की तरफ उठाकर देखने पर पूरा का पूरा फूल और इसके बीच में लिखा 1000 साफ नज़र आता है।

3. उभरा हुआ यह निशान खास तौर पर नेत्रहीनों को नोट पहचानने में मदद करता है। 5 और 10 रुपए को छोड़कर बाकी सभी नोटों में इस जगह पर एक खास आकृति होती है। 20 रुपए में खड़ा आयत, 50 रुपए में चौकोर, 100 रुपए में त्रिकोण, 500 रुपए में वृत्त, 1000 रुपए में समचतुर्भुज या डायमण्ड।

4. 20, 50, 100, 500 तथा 1000 रुपए के नोटों में महात्मा गाँधी की तस्वीर, रिज़र्व बैंक की गारंटी, बाईं ओर का अशोक स्तम्भ चिन्ह और रिज़र्व बैंक अध्यक्ष के हस्ताक्षर उभरे हुए से होते हैं। यह एक बहुत ही खास तरह की इंटेलेगो छपाई के कारण होते हैं।

7. इस पट्टी पर एक चिन्ह छिपा होता है। 20, 50, 100, 500 व 1000 रुपए के नोट में यह चिन्ह नोट के मूल्य को दर्शाने वाला अंक होता है। अंक तभी नज़र आता है जब नोट पर प्रकाश 45° के कोण में पड़ता है।

5. नोट के ऊपर (दाहिनी ओर) व नीचे (बाईं ओर) दिए अंक फ्लोरोसेंट स्याही में छपे होते हैं। नोट का कागज़ बनाते समय ही उसमें ऑप्टिकल फाइबर, वॉटर मार्क जैसी चीज़ें डाली जाती हैं। नोट को पराबैंगनी प्रकाश में देखने पर उसका नम्बर व फाइबर दोनों साफ नज़र आते हैं।

6. 10 से 1000 तक के सभी नोटों में एक सुरक्षा लकीर होती है। 10, 20 और 50 रुपए के नोट में यह लकीर पूरी तरह से नोट के भीतर रहती है। जबकि 100, 500 तथा 1000 रुपए में यह लकीर कुछ जगहों पर बाहर निकली हुई है। 1000 रुपए के नोट में इस लकीर पर देवनागरी लिपि में "भारत" तथा अँग्रेज़ी में "1000" व "RBI" लिखा होता है। बाकी नोटों में अंक (नोट का मूल्य) नहीं होता है। नोट को रोशनी में देखने पर पूरी लकीर नज़र आती है।

मैले-कुचैले, कटे-फटे नोट



मैले-कुचैले, कटे-फटे नोटों को बैंक में बदला जा सकता है। नोट के चाहे दो टुकड़े हो गए हों उन्हें भी बदला जा सकता है। हाँ, ज़रूरी है कि दोनों कोनों के नम्बर न कटे हों। पर मान लो तुम्हारा नोट बहुत ही जर्जर है, उसके महत्वपूर्ण हिस्से गायब हैं तो? तो भी उसे बदला जा सकता है पर उसका पूरा मूल्य नहीं मिलेगा। मूल्य रिज़र्व बैंक के नियमों के अनुसार तय होता है। नोट के महत्वपूर्ण हिस्से हैं: नोट लागू करने वाले अधिकारी का नाम, बैंक की गारंटी व वादा, हस्ताक्षर, अशोक स्तम्भ का चिन्ह, महात्मा गाँधी की तस्वीर तथा वॉटरमार्क।

साभार: RBI की वेबसाइट

भाग्यशाली मेंडल (भाग 2)

सुशील जोशी

पिछली बार हमने देखा था कि मेंडल ने मटर के साथ प्रयोग करके अनुवांशिकी के नियम खोजे थे। तुम्हें याद होगा कि मेंडल का पहला नियम यह था कि किसी भी गुण के दो कारक होते हैं और जन्यु (यानी पराग कण और बीजांड) बनते समय ये कारक अलग-अलग हो जाते हैं। इन कारकों में से एक हावी रहता है और दूसरा दब्बू। मेंडल ने इस नियम को कारकों का पृथक्करण कहा था।

ध्यान देने की बात यह है कि किसी गुण का हावी रूप दिखने के लिए इतना ही ज़रूरी है कि दोनों कारकों में से एक हावी हो मगर दब्बू रूप तभी दिख सकता है जब दोनों कारक दब्बू हों।

मेंडल के प्रयोग में एक से ज़्यादा गुण

मेंडल ने अपने प्रयोग सिर्फ एक-एक गुण के साथ ही नहीं किए थे। उन्होंने यह भी देखने की कोशिश की थी कि यदि एक से अधिक गुणों का विश्लेषण एक साथ किया जाए, तो क्या होगा। वे देखना चाहते थे कि क्या दो गुण या तीन गुण एक-दूसरे को प्रभावित करेंगे।

इसके लिए उन्होंने एक बार फिर मटर को ही लिया। इस बार उन्होंने चिकने पीले दाने वाले पौधों का परागण खुरदरे हरे दाने वाले पौधों से करवाया। ये पौधे दोनों गुणों के मामले में सच्चे थे। इस तरह बने बीजों से जो पौधे बने उन सबमें दाने चिकने पीले थे। यह तो हम जानते ही हैं कि अगर दानों में चिकनेपन और पीलेपन के कारक हावी हैं, तो अगली पीढ़ी में सारे पौधों में दाने चिकने पीले होंगे। ठीक है।

अब मेंडल ने इन पौधों का आपस में परागण करवाया। जो अगली पीढ़ी तैयार हुई उसमें स्थिति निम्नानुसार थी:

315 में चिकने पीले दाने, 101 में खुरदरे पीले दाने
108 में चिकने हरे दाने, 32 में खुरदरे हरे दाने

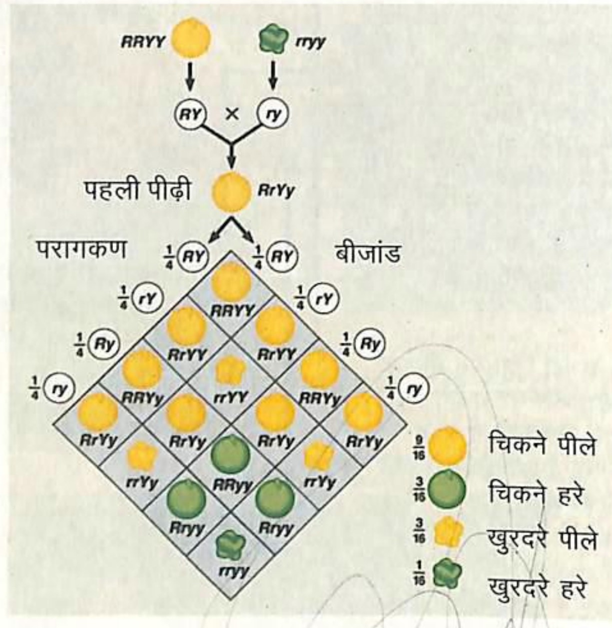
जीनोटाइप-फीनोटाइप

इनको यदि थोड़ा लगभग कर दें तो इनका अनुपात 9:3:3:1 निकलता है। हमें पता नहीं कि इनमें कारकों का बँटवारा कैसा है। यह तो ऊपर से देखने पर दिखने वाले गुण हैं। इन्हें आजकल की भाषा में फीनोटाइप कहते हैं। जब हम कारकों की व्यवस्था को देखते हैं तो उसे जीनोटाइप कहते हैं। मेंडल के सामने सवाल यह था कि फीनोटाइप में 9:3:3:1 का अनुपात कैसे आया। एक बार फिर उसी तरह के चित्र का सहारा लें। मान लें कि चिकने और खुरदरे कारकों को R और r से तथा पीले व हरे कारकों को Y और y से दर्शाते हैं।

तो शुरू में इनके बीज थे RR/YY और rryy

पहली पीढ़ी में बीज बने Rr/Yy और RrYy

चूँकि चिकनापन और पीलापन हावी कारक हैं इसलिए पहली पीढ़ी के सारे दाने चिकने-पीले होंगे। इस पीढ़ी में पर-परागण करवाया जाए तो क्या होगा? इनके परागकण और बीजांड निम्नानुसार बनेंगे:



इन पौधों के जीनोटाइप हैं। ध्यान दो, तो पता चलेगा कि ये 9 जीनोटाइप हैं। फीनोटाइप अलग होंगे। मज़ेदार बात है कि ये 9 जीनोटाइप कुल 4 फीनोटाइप के द्योतक हैं। क्या तुम बता सकते हो कि इनमें फीनोटाइप कौन-कौन-से हैं?

फीनोटाइप का वितरण जानने के लिए हमें यह देखना होगा कि इनमें हावी और दब्बू कारकों के हिसाब से किस-किस तरह के बीज दिखाई देंगे। कुल सोलह पौधे हैं। जितने में भी R या Y हैं वे चिकने व पीले होंगे। गिनकर देख सकते हो कि ऐसे पौधों की संख्या 9 है जिनमें कम से कम एक R और एक Y है।

इसी प्रकार से ऐसे पौधे भी गिन सकते हैं जिनमें कोई भी R या Y नहीं है। यानी इनमें दोनों दब्बू कारक हैं। इनके दाने हरे व खुरदरे होंगे। और फिर ऐसे पौधे जिनमें कम से कम एक R है मगर Y नहीं है, इनके दाने चिकने और हरे होंगे जबकि इससे उल्टे जीनोटाइप वाले पौधों के दाने खुरदरे पीले होंगे। यदि तुम इस आधार पर अनुपात निकालोगे तो वह 9:3:3:1 आएगा।

यह तो हो गए आँकड़े। मेंडल ने इन आँकड़ों के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि अलग-अलग गुण एक-दूसरे से स्वतंत्र रहते हैं और अलग-अलग रहकर ही अगली पीढ़ी में जाते हैं। मतलब हरापन खुरदरेपन को प्रभावित नहीं करता। जब परागकण बनते हैं तो हरेपन का कारक स्वतंत्र रहता है और खुरदरेपन का कारक अलग। यह मेंडल का दूसरा नियम है - विभिन्न गुण एक-दूसरे से स्वतंत्र रहते हैं।

मगर आज अनुवांशिकी विज्ञान में जितनी प्रगति हो चुकी है उसे देखते हुए लगता है कि मेंडल भाग्यशाली ही थे कि वे यह नियम खोज पाए। वो इसलिए कि किसी कारण से मेंडल ने ऐसे गुण चुने थे जो वास्तव में एक-एक कारक से निर्धारित होते हैं और एक-दूसरे पर असर नहीं डालते हैं। ये गुण ऐसे भी थे जो एक-दूसरे से स्वतंत्र अगली पीढ़ी में जाते हैं। सम्भवतः ये अलग-अलग गुणसूत्रों पर उपस्थित हैं। संयोग से मेंडल ने ऐसे गुण चुने। अन्यथा ऐसे कई गुण हैं जो प्रायः साथ-साथ ही अगली पीढ़ी में जाते हैं।

वैसे कुछ लोग यह भी कहते हैं कि मेंडल ने अन्य कई गुणों का अध्ययन किया था मगर आँकड़े उन्हीं प्रयोगों के रखे जो उनके नियम में फिट होते थे। तो क्या मेंडल को पहले से नियम का आभास था? ऐसा लगता तो नहीं है। हो सकता है कि जब कई सारे प्रयोगों में उन्हें एक मोटा-मोटा नियम दिखने लगा हो तब उन्होंने उसी के अनुसार आँकड़ों को सहेजना शुरू कर दिया हो। बहरहाल, ये सब तो अटकलें हैं।

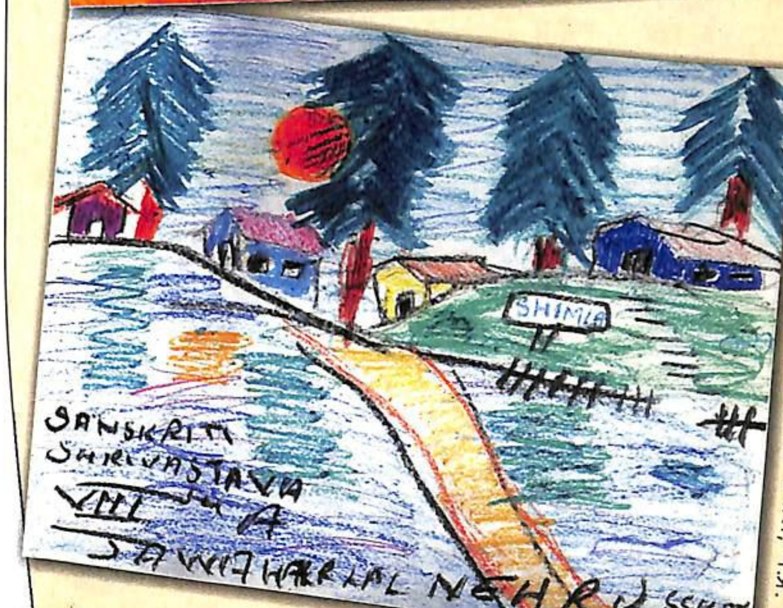
एक बात और। मेंडल ने उपरोक्त दोनों नियम सिर्फ उन गुणों के प्रकट होने के आंकड़ों को देखकर निकाले थे। उन्हें कोशिका की आन्तरिक संरचना की कोई मदद नहीं मिली थी। उन्होंने ये नियम प्रकाशित ज़रूर किए थे मगर इन पर किसी ने ध्यान नहीं दिया था। इन पर ध्यान दिया गया करीब 40 साल बाद। यह भी अटकलों का विषय है कि ऐसा क्यों हुआ।



कार्टून: जे. चेज़

मेरा पन्ना


प्रियंका इंगले, छठी, मुम्बई, महाराष्ट्र



संस्कृति श्रीवास्तव, आठवीं, भोपाल, म.प्र.


मेरी प्रकाश सालवे, छठी, मुम्बई, महाराष्ट्र

मेरा पन्ना

बोली चिड़िया मछली से

चिड़िया रंग बिरंगी
खोल रही है पंख
उड़ती उड़ती जाती
वहाँ हवा के संग
दूर, नदी तक जाकर
कहती वह मछली से -
बोलो, तुम कैसी हो?
मछली ज़रा उछलती
कहती, "मैं अच्छी हूँ।"
जाती फिर पानी में
चिड़िया भी फिर उड़कर
हो जाती है फुर्र।

(यह कविता प्रयाग शुक्ल ने अपनी सात साल की नातिन गौरजा सिद्धार्थ के साथ मिलकर लिखी है।)



प्रमोद, तीसरी

परी का सपना

दीदी कहती एक कहानी
थी वह परियों की रानी
उड़ती थी वह आसमान में
सुन्दर सपने को लेकर

उसने सोचा कि चलो
पृथ्वी पर पूरे करने सपने
एक दिन वह उड़ते-उड़ते
आ गई वह पृथ्वी पर

अर्चना कश्यप, छठी, कानपुर

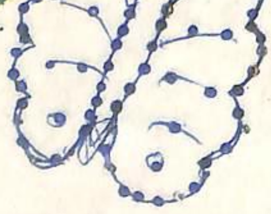
बाँधवगढ़ ट्रिप

मैं इस गर्मी की छुट्टियों में बाँधवगढ़ अपनी माँ के साथ गई थी। हम कटनी तक ट्रेन से गए और फिर तालाब तक जीप से गए। हम एक ग्रुप के साथ गए थे जिस का नाम "निसर्ग" था। हम कुम-कुम होटल में रुके। मैंने पाँच दिन में चार बाघ बहुत करीब से देखे। बाँधवगढ़ के जंगल में ज़्यादा पक्षी थे और कम प्राणी थे। हम सब जंगल में जाने के लिए सुबह 3:30 बजे उठते थे। सुबह बहुत ठण्डी हवा होती थी। मैं सब गलत रंग के कपड़े ले गई थी। मैंने गुलाबी, लाल और काले रंग के कपड़े पहने थे। हमारे होटल में रात को बहुत प्रकार के कीड़े आते थे। हमारे कमरे में बहुत मकड़ी थी। रात को जंगल से बहुत आवाज़ें आती थीं। हमें डर लगता था इस कारण हम बच्चे चिपक-चिपककर सोते थे। मैंने नाचते हुए मोर भी देखे। मेरी माँ ने लड़ते हुए बाघ और बाघ के 3 बच्चे देखे। सबसे आखरी में मैंने एक बन्दर को देखा जो अपने माँ की पीठ पर चढ़ने की कोशिश कर रहा था। उसकी माँ जब दूसरे पेड़ पर कूदी तो वो गिर गया। हम सब फिर संग्रहालय गए। वहाँ बाघ के बारे में बहुत जानकारी लिखी थी। वहाँ पर एक दिन बहुत बारिश हुई थी। हम सब भीगे थे। मुझे वहाँ बहुत मज़ा आया। मैं अगली बार कान्हा जाने वाली हूँ।

श्रावणी शेंड्ये, चौथी, भोपाल, म.प्र.

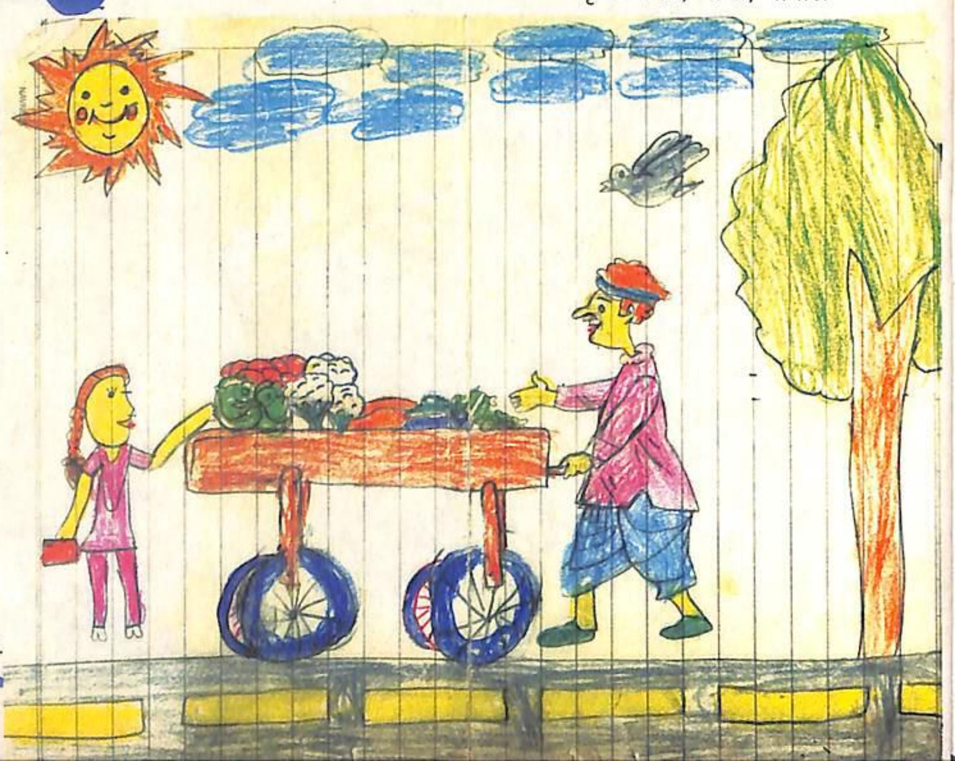


राजेश बिन्द, सातवीं, मुम्बई



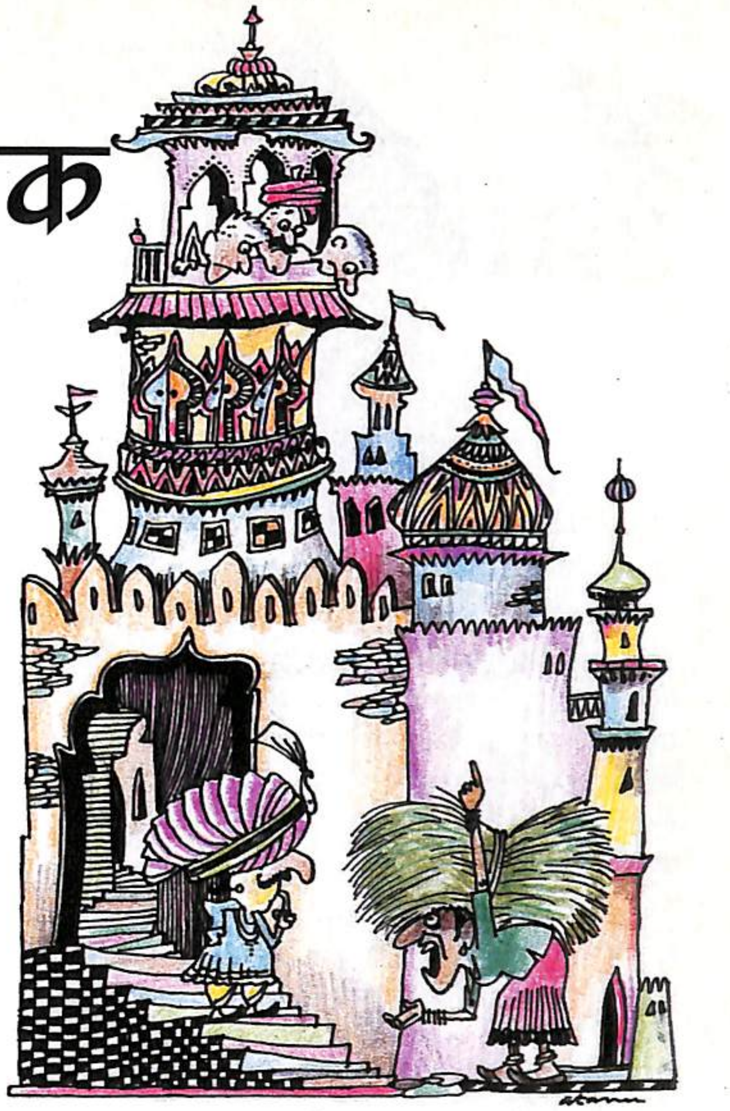
कोमल पारमा, पाँचवीं, उज्जैन, म.प्र.

अमृता यादव, चौथी, भोपाल



गोविन्द शर्मा

अक्ल की खुराक



एक था राजा। उसे नया महल बनवाने की सूझी। मज़दूरों का काम बिना पैसे दिए किसानों से करवाने लगा। किसानों ने कहा भी कि आजकल फसल बोने के दिन हैं। हमें अपने खेतों में काम करने दें। पर राजा नहीं माना। वह सिपाही भेजकर किसानों को बुलाने लगा। बेचारे किसान, दिन में राजा के लिए काम करते और रात में अपने खेतों में काम करते।

महल तैयार हो गया। राजा उसमें रहने लगा। अब उसे एक नई सनक सवार हुई। किसानों को बुला-बुलाकर महल दिखाता और उनसे अपनी प्रशंसा सुनता। वे निवेदन करते रहते कि मालिक फसलें पक चुकी हैं। उन्हें काटने तथा उनकी रखवाली के लिए हमारा खेतों में रहना ज़रूरी है। साल भर की मेहनत का सवाल है। हम बाद में आपका महल देखने आएँगे। राजा नहीं माना। बोला, "मेरे बुलाने पर जो किसान नहीं आएगा, उसे जेल भिजवा दूँगा।"

एक दिन मेघाराम के परिवार की बारी आई। सबसे पहले बूढ़ा मेघाराम राजा का महल देखने गया। राजा ने सबसे ऊँची मंज़िल का अपना कमरा दिखाया। कमरा देखकर मेघाराम बोला, "यह तो बहुत सुन्दर है। पर एक बात है....।"

"क्या?" राजा बोला। "आप इस कमरे में मर जाएँ तो आपको नीचे कैसे ले जाया जाएगा? आपके महल का जीना तो बहुत सँकरा है।" यह सुनकर राजा को गुस्सा आ गया। उसने मेघाराम को जेल में डलवा दिया। उसका बड़ा बेटा अपने पिता को छुड़वाने गया तो उसे भी महल दिखाया और राजा ने बताया कि तुम्हारे मूर्ख पिता ने ऐसी भद्दी बात कही थी। वह बोला, "मेरे पिता जी खेत-खलियान में काम करने वाले हैं। उनके पास समझ कम है। वरना वे ऐसा सवाल नहीं करते।"

राजा खुश हो गया। राजा ने उससे उसके पिता वाला सवाल पूछा। वह बोला, "यह तो मामूली बात है। अगर आप इस कक्ष में मर गए तो आपको सीढ़ियों से नीचे ले जाने की ज़रूरत ही नहीं है। कितनी बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ हैं। आपको खिड़की से सीधे ज़मीन पर फेंक दिया जाएगा।" राजा ने उसे भी जेल भिजवा दिया गया। दोनों को छुड़वाने के लिए छोटा बेटा आया। आते ही उसने कहा, "मेरे पिता और बड़े भाई में अक्ल ही नहीं है। हर जगह गलत सुझाव देते हैं। चाहे आप मरे हुए ही क्यों न हों, खिड़की से फेंकने पर तो चोट ही आएगी।" राजा गुस्से में आग बबूला हो गया। उसने छोटे बेटे को भी कैद कर लिया।

शाम को किसान की पत्नी घास का गठ्ठर लेकर राजा के महल में आई। राजा ने पूछा, "तुम यह घास क्यों लाई हो?" वह बोली, "राजा, आपने मेरे तीन पशु पकड़ रखे हैं। यह घास मुझे उन्हें ही खिलाना है।" राजा समझ गया कि यह उस किसान की पत्नी और उन दो युवकों की माँ है। राजा ने उसे सारी बात बताई। वह बोली, "इसीलिए तो मैं उन्हें पशु कह रही हूँ। भला यह भी कोई चिन्ता की बात है? अरे, जुल्मी मर गया तो मर गया, पीछा छूटा। उसे कमरे में ही पड़ा रहने दिया जाए। हमें क्या?" उसकी बात सुनकर राजा को एक बार तो गुस्सा आया। फिर वह देर तक सोचता रहा। थोड़ी देर बाद उसने तीनों को रिहा कर दिया। चकमक

अक्टूबर माह की चित्र पहेली का हल

इ		मो	म	ब	त्ती			ट
न्द्र		ग		र		न	का	ब
ध	तू	रा		सा	रं	गी		
नु			रे	त		ना	ट	क
ष		पु	ल		दू			टो
	प		गा	ज	र		प	री
ह	थ	क	ड़ी		बी	क	र	
ज्जा		बा		जू	न		का	रा
म	क	ड़ी		ती		मो	र	नी

स्वयंप्रकाश

आखिर चुक्कू कहाँ गया?

हम चार-पाँच दोस्तों की अंतरंग मित्र मण्डली में राधेश्याम सबसे बड़ा था। उसकी उमर और कद दोनों हमसे कहीं ज़्यादा थे। सातवीं कक्षा में ही उसकी मूँछें आने लगी थीं और आवाज़ भारी होने लगी थी। हम राधेश्याम के दोस्त हैं – यह जानकर कोई हमें ज़बर्दस्ती परेशान नहीं करता था। उल्टे हम ही थोड़ी दादागिरी कर लिया करते थे।

एक दिन राधेश्याम कहीं से भूरे रंग का एक छोटा-सा कुत्ते का पिल्ला उठा लाया। पिल्ला बड़ा प्यारा था। नाटा और बड़े-बड़े कानों वाला। उसकी आँखें एकदम गोल और चमकदार थीं। उसे देखने के लिए सारे बच्चे इकट्ठे हो गए। उसके सामने एक प्लास्टिक की कटोरी में दूध रख दिया गया... लेकिन दूध पीने की बजाय वह बारी-बारी से हम सबको ही देखे जा रहा था।

राधेश्याम ने बताया कि इसका नाम ओडायर है। दो-चार रोज़ में ही वह बच्चों के साथ हिल-मिल गया। और पता नहीं कैसे उसका नाम चुक्कू पड़ गया। शुरू-शुरू में तो राधेश्याम सबको बताता कि इसका नाम चुक्कू नहीं ओडायर है, पर फिर जैसे वो भी मान गया। उसका नाम चुक्कू ही ठीक है।

चुक्कू हरेक भागते हुए बच्चे के पीछे भागता। तुम रुक जाओ तो वो भी रुक जाएगा और एकटक तुम्हें देखने लगेगा। मानो इन्तज़ार कर रहा हो कि अब तुम क्या करते हो! चुक्कू को गोद में लेने की होड़ मची रहती और वह पूरी शाम इस गोद से उस गोद जाता रहता। कभी छीना झपटी से तंग आ जाता तो अपनी पतली-सी आवाज़ में भौंकने लगता। भौंकता तो बच्चे डर के उसे नीचे उतार देते, उसे घेरकर बैठ जाते और फिर उसी की तरह भौं-भौं करने लगते। यह देख वो चुप हो जाता और थोड़ी हैरानी से एक-एक का चेहरा देखने लगता – मानो सोच रहा हो कि ये क्यों भौंक रहे हैं? फिर जब सब अपने खेल में लग जाते तो धीरे-धीरे चलता हुआ वो एक कोने तक जाता और दीवार की तरफ मुँह करके थोड़ा-सा भौंकता, जैसे कह रहा हो – हाँ-नहीं-तो या जैसे अपनी आवाज़ टेस्ट कर रहा हो कि ठीक है या नहीं!

शुरू-शुरू में तो राधेश्याम के घरवाले चुक्कू को मुसीबत समझते और राधेश्याम को झिड़कते रहते कि कहाँ से उठा लाया इसे? सारा घर गन्दा कर रहा है! जा, छोड़के आ, जहाँ से लाया! लेकिन बहुत जल्द चुक्कू ने राधेश्याम के घरवालों का भी दिल जीत लिया। कुछ रोज़ बाद वह राधेश्याम की बहन प्रमिला की गोद में नज़र आने लगा। प्रमिला उसे अपने हाथ से बिस्किट खिलाती तो उसकी सहेलियाँ उसे देखती रह जातीं कि हाय! इसे डर नहीं लगता? अभी काट लेता तो?

थोड़े दिनों में चुक्कू सबका लाड़ला बन गया। वह किसी के भी घर में घुस जाता और कहीं भी कुछ भी खा आता। लेकिन रात को ज़रूर अपने घर पहुँच जाता और हमेशा राधेश्याम के बिस्तर के पास ही सोता।

जब चुक्कू थोड़ा बड़ा हुआ तो राधेश्याम उसे साइकिल पर बैठाकर घुमाने ले जाने लगा। चुक्कू को बैठाने के लिए राधेश्याम ने साइकिल के आगे एक टोकरी भी लगवा ली थी। बाहर घूमने में चुक्कू को इतना मज़ा आता कि घण्टा भर घूमने के बाद भी टोकरी से उतरने को तैयार नहीं होता।

फिर राधेश्याम उसे शाम को स्कूल के ग्राउण्ड पर ले जाने लगा। ग्राउण्ड में खुली हवा में दौड़ने-कूदने में चुक्कू को बड़ा मज़ा आता। राधेश्याम साइकिल पर चुक्कू के साथ रेस लगाता। हम बॉल को आसमान में उछालते और चुक्कू दौड़कर जाता और ज़मीन पर पड़ते ही बॉल को मुँह में दबोच लाता।

साल भर में तो हाल यह हो गया कि हमारे कैम्पस में कहीं से भी आवाज़ आती – चुक्कू!! तो चुक्कू जहाँ भी होता वहाँ से हाँफता-भागता हुआ उसे पुकारने वाले के पास पहुँच जाता। एक और भी कारण से चुक्कू काफी लोकप्रिय हो गया था। उसके डर से घर में चूहों का आना बन्द हो गया था। चुक्कू को चूहे की भनक भी मिल जाती तो उसके सिर पर भूत सवार हो जाता। वह पीछे पड़ जाता और इधर से उधर, उधर से इधर झपट्टे मार-मारकर चूहे को खदेड़कर ही दम लेता।

एक दिन अचानक चुक्कू गायब हो गया।

हर घर में चुक्कू को ढूँढा गया। यहाँ तक कि छत, बुखारी, अटाले की कोठरी और ताला जड़े कमरों को भी खुलवाकर देखा गया, लेकिन चुक्कू का कुछ पता नहीं चला। अन्दाज़ा लगाया गया कि शायद वह सड़क पर निकल गया हो और कोई बस या कार उसे कुचल गई हो, या हो सकता है किसी खुले मेनहोल में गिर गया हो और उसकी चीख-पुकार बाहर किसी को सुनाई ही न दी हो, या यह भी हो सकता है कि अनजाने में किसी की गाड़ी में बैठ गया हो... या हो सकता है चलते-चलते गंजी कम्पाउण्ड की तरफ निकल गया हो और



गलियों के खूँखार आवारा कुत्तों ने उसे चीरफाड़ कर फेंक दिया हो! लेकिन किसी ने कुछ देखा तो नहीं था।

राधेश्याम उदास रहने लगा। वह साइकिल पर घूमने भी जाता तो उसकी निगाहें इधर-उधर ढूँढती रहतीं – शायद कहीं चुक्कू दिख जाए! शाम को देर तक स्कूल के मैदान पर उसकी निगाहें चुक्कू के इन्तज़ार में रहतीं। लेकिन मैदान... इधर से उधर तक खाली रहता।

धीरे-धीरे हम चुक्कू को भूलने लगे।

एक दिन खेल-घण्टी में बालकिशन नाम के एक लड़के ने राधेश्याम को बुलाकर कहा कि कल उसने परदेसीपुरा में एक कुत्ते को देखा है जो हूबहू चुक्कू जैसा लग रहा था। हो सकता है चुक्कू ही हो! चुक्कू!! लेकिन परदेसीपुरा तो हमारे घर से नौ किलोमीटर दूर है। हमारा चुक्कू परदेसीपुरा कैसे पहुँच सकता है? ज़रूर बालकिशन को गलतफहमी हुई होगी।

लेकिन राधेश्याम का दिल नहीं माना। दूसरे दिन रविवार था। राधेश्याम सुबह-सुबह बालकिशन के घर पहुँच गया जो संयोगितागंज में रहता था। उसने बालकिशन को उसके साथ परदेसीपुरा चलने को कहा।

परदेसीपुरा में बालकिशन की बहन रहती थी। बहन के घर के सामने की लाइन में कुछ दूर एक बूढ़ा आदमी रहता था जिसे बहुत कम दिखाई देता था। बूढ़े का एक ही बेटा था जो पिछले साल हीरो बनने के चक्कर में घर से भागकर बम्बई चला गया था। बूढ़ा-बुढ़िया घर के आगे ज़मीन पर कपड़ा बिछाकर कभी अमरूद, कभी जामुन, कभी कबीट, कभी इमली बेचते थे। बालकिशन की बहन ने बताया कि जब से यह कुत्ता इनके पास आया है किसी की हिम्मत नहीं होती कि कोई इनके कबीट या अमरूद या कुछ उठा के ले जाए... या बिना पैसे दिए चल दे... या एक की जगह दो ढेरियाँ उठा ले। टॉमी पट्ठा पास में बैठा ध्यान से देखता रहता और गड़बड़ करने वाले की फौरन टाँग पकड़ लेता है। टॉमी के आने से बुड्ढे-बुढ़िया को बड़ा आराम हो गया। वर्ना पहले तो छोरी-छोरा कुछ भी उठाके भाग जाते और बुढ़िया बिचारी चिल्लाती रह जाती। और कोई नहीं तो किसी की बकरी ही मुँह मार जाती। बुड्ढे को तो पता ही नहीं चलता।

दूसरे दिन राधेश्याम हम अंतरंग दोस्तों को पूरी बात बता रहा था।

...हाँ, वह चुक्कू ही था। दूर से ही मैंने देखा, लेकिन फौरन पहचान लिया। मेरा ख्याल है कि उसने भी मुझे पहचान लिया था। वह उठकर खड़ा हो गया था। उसके कान खड़े हो गए थे। वह टकटकी लगाकर मुझे देखे जा रहा था और दुम हिला रहा था। इससे पहले कि मैं उसके और पास जाऊँ या मेरे मुँह से उसका नाम निकले, मैंने फुर्ती से साइकिल पलटाई और उस पर चढ़ते हुए चीखा, "बालकिशन बैठ!" और तेज़ी से पैडल मारता साइकिल भगाता गया। बीच में एक बार पीछे मुड़कर देखा – कहीं वह पीछे-पीछे तो नहीं रहा?... नहीं आ रहा था।

पृष्ठ 33 पर जारी

माथा पच्ची

चाय, कॉफी और कोला

मान लो कि 500 ग्राम चाय की पत्तियों से हम 160 कप चाय तैयार कर सकते हैं और 500 ग्राम कॉफी पाउडर से 40 कप कॉफी। यह भी मान लो कि 500 ग्राम चाय में कैफीन की मात्रा 500 ग्राम कॉफी की तुलना में दुगुनी है। अब बताओ, एक कप कॉफी की तुलना में एक कप चाय में कैफीन की मात्रा कितनी कम या ज़्यादा होगी?

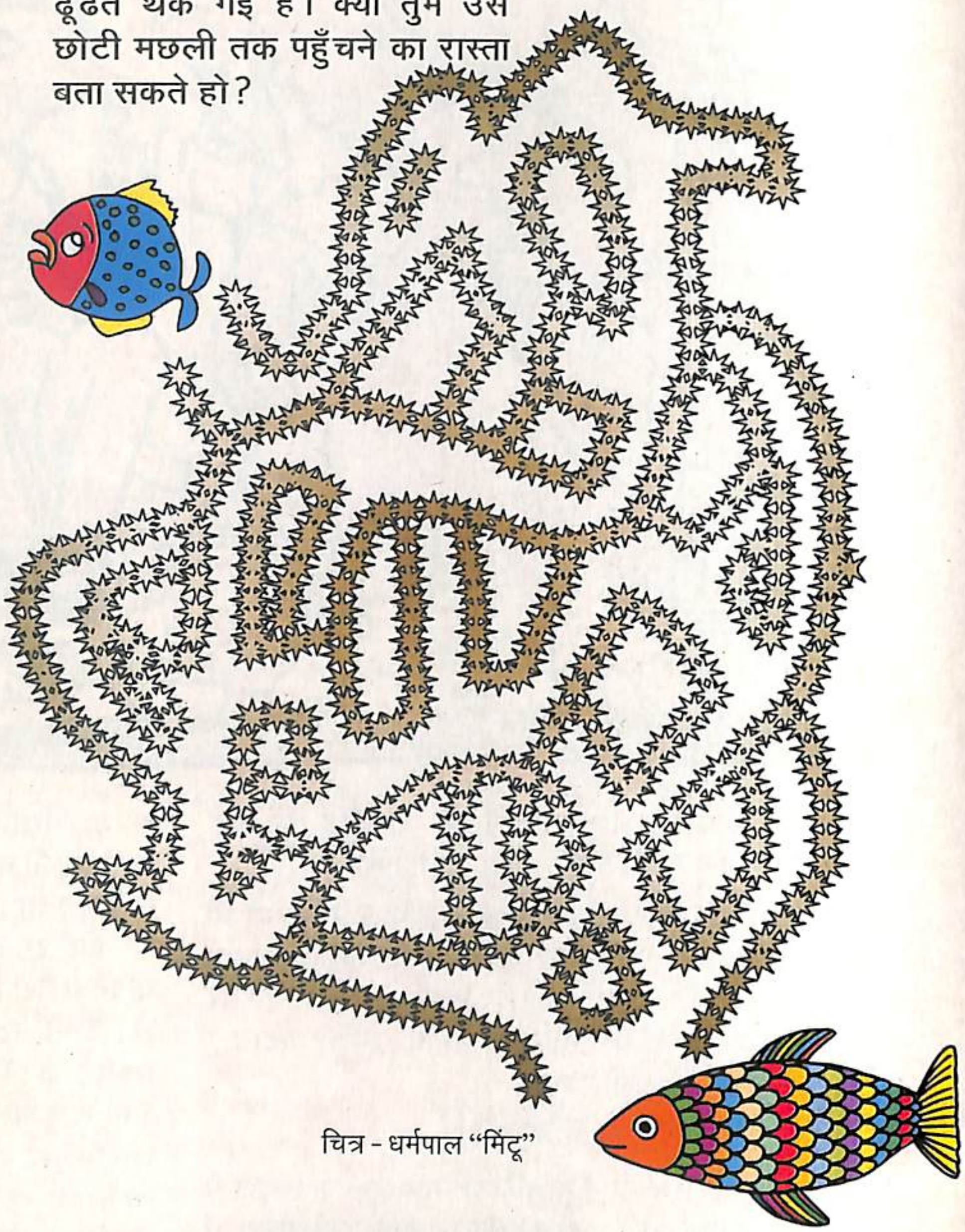
अब मान लो कि एक बोतल कोला में कैफीन की मात्रा एक कप कॉफी की तुलना में एक-चौथाई है। बताओ, एक बोतल कोला की तुलना में एक कप चाय में कैफीन की मात्रा कितनी कम-ज़्यादा होगी?

एक कप चाय में कैफीन की मात्रा एक कप कॉफी की तुलना में आधी होगी। एक बोतल कोला की तुलना में एक कप चाय में कैफीन की मात्रा दुगुनी होगी।

कँचे का बँटवारा

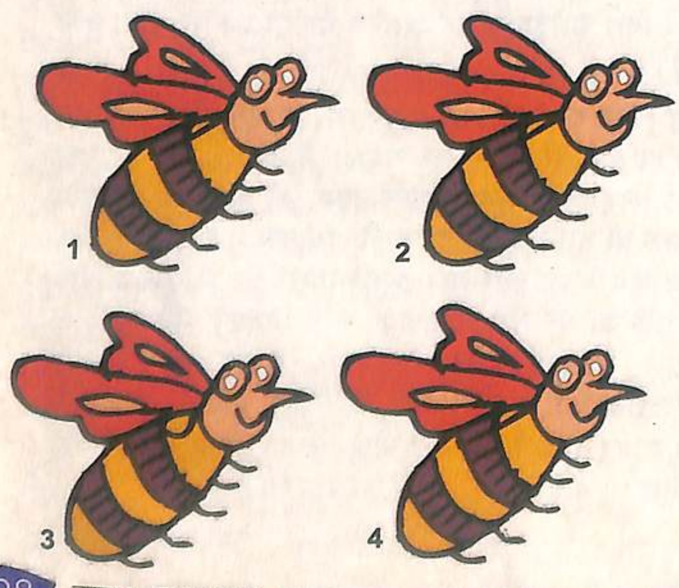
तीन दोस्तों ने आपस में कुछ कँचे बाँटे। तीनों को चार-चार कँचे मिले। अब तीनों के पास कुल उतने ही कँचे शेष थे जितने हरेक को बाँटे गए थे। तो कुल कितने कँचे थे?

बड़ी मछली छोटी मछली को ढूँढते-ढूँढते थक गई है। क्या तुम उसे छोटी मछली तक पहुँचने का रास्ता बता सकते हो?



चित्र - धर्मपाल "मिंटू"

कौन-सी तितली बाकी सबसे अलग है?



सिकन्दर बनाम पुरू

सिकन्दर और पुरू की लड़ाई हुई। इसमें यूनानियों ने पुरू के एक सैनिक को कैद कर लिया था। उसको मौत की सज़ा सुनाई गई। पर सिकन्दर जुएबाज़ शख्स था। इसलिए उसने सैनिक को बचने का एक मौका दिया। उसने शर्त रखी, "तुम्हें मात्र एक वाक्य बोलने की इजाज़त है। यदि तुम झूठ बोलते हो तो तलवार से तुम्हारा सिर उड़ा दिया जाएगा। यदि सच बोलते हो तो तुम्हें फाँसी चढ़ा दिया जाएगा।"

ज़रा सोचो सैनिक क्या जवाब दे ताकि वह बच जाए?

सैनिक कहे, "सिर तलवार से उड़ा दिया जाएगा।"

कक्षा में आ गई। फिर पानीपूरी चाची शाम को पानीराम चाचाजी को बता देंगी। फिर कल आप पानीपूरी चाची से पूछना कि चाची आपने चाचा को बताया या नहीं। अगर वे बताना भूल गई हों तो आप उनसे कह देना, आज ज़रूर बता दें। फिर अगले दिन पूछकर पता कर लेना चाची ने चाचा को बताया कि नहीं।" अमिया ने डाकिए को समझाया।

"देखो, यह तो बहुत लम्बा चक्कर हो जाएगा अमिया! मैं ऐसा करूँगा चिट्ठियाँ बाँटने के बाद बस-अड्डे पर जाकर पानीराम जी को उनके ठेले पर ही जाकर बता आऊँगा।" डाकिए ने कहा।

"तब फिर चाची को कौन बताएगा?"

"अब मैं चलता हूँ अमिया।" डाकिए ने साइकिल आगे बढ़ा दी।

"रुको तो सही पहले आप। जब आप चाची को बताओगे तो उनके पड़ोस में ही समीरा दीदी रहती हैं। वे मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। आप उनको भी बता देना।" अमिया ने साइकिल के कैरियर पर हाथ रखकर कहा।



बैंगन

काल-कलूटा काल-कलूटा
छोटा-छोटा मोटा-मोटा
चिकना-चिकना गीला-गीला
अन्दर से कुछ पीला-पीला
हरी-हरी-सी उसकी चोटी
हल्की-हल्की छोटी-छोटी
चीरें और पकाएँ उसको
लोग मज़े से खाएँ उसको

अक्लू चाचा

हमारे अक्लू चाचा घर में आते ही बोले, "एक सवाल के जवाब में मैंने बताया कि भोपाल से दिल्ली की दूरी उतनी ही है, जितनी दिल्ली से भोपाल की है। क्या मैंने सही बताया?"

"हाँ"

"फिर मुझ से दूसरा सवाल पूछा गया तो मैंने बताया कि दशहरे के जितने दिन बाद दिवाली आती है, दिवाली के भी उतने ही दिन बाद दशहरा आता है। मैंने सही बताया?"

ज़रा सोचकर बताओ।

साबुन में क्या-क्या?

अम्बुज ने बताया, "नहाने के साबुन में फूल, पत्ते, फल भी होते हैं। कुछ में नींबू, गुलाब तो कुछ में नीम होता है। सूँघने पर पता चलता है कि किस में क्या है।"

इस पर फरहा ने कहा, "नहाने की सब साबुनों में एक चीज़ ज़रूर होती है। उसका सूँघने से पता नहीं चलता। थोड़ा-सा झाग आँख में चला जाए, तभी पता चलता है।"

"क्या है वह चीज़?"

"मिर्च, और नहीं तो क्या!"

– गोविन्द शर्मा

इन दोनों तस्वीरों में तुम्हें कितने अन्तर नज़र आ रहे हैं?



चित्रः जितेन्द्र ठाकुर

अमिया तीसरी कक्षा में आ गई।
मोर, बिल्ली, पिल्ले, अड़ोसी-पड़ो
तक कि डाकिए को भी बताई। उ
"बताओ अब मैं कौन-सी कक्षा में

"कौन-सी में आ गई?" डाकिए

"आपको पता ही नहीं? अब मैं त्तियों से
गई।" अमिया ने बताया। ते हैं और

"अरे वाह।" डाकिए ने कहा। न कॉफी।

अमिया ने पूछा, "आप रेखा अं चाय में
देने जाते हो न?" ॉफी की

"रेखा!?" डाकिए ने सोच में पं एक कप
में कैफीन

"अरे जिनकी एक भैंस की पूँछ ी?
रेखा के घर की पहचान बताई। कोला में

"वे जो चरवाहे हैं?" डाकिए ने तुलना
की। बोतल

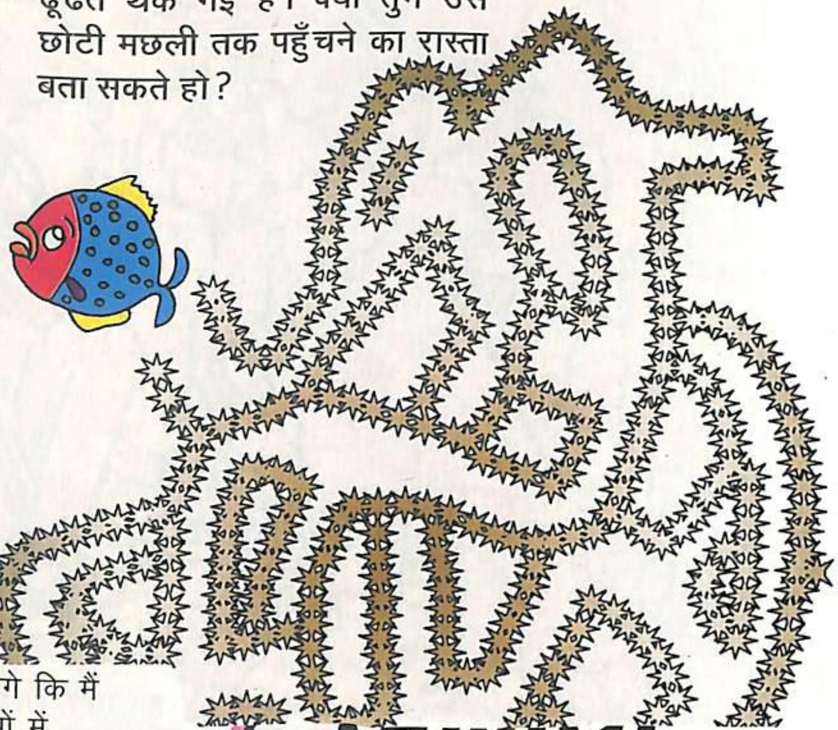
"हाँ, वही। आप उनके घर में सबको बता दोगे कि मैं तीसरी में आ गई?" अमिया ने डाकिए की आँखों में देखते हुए पूछा।

"बिल्कुल बता दूँगा?" डाकिए ने खुश होते हुए कहा।

"ऐसे तो आप गोलू दीदी औरों के घर भी बता सकते हो। वो तो और भी आसान है।"

अमिया ने कहा। "उनकी मुर्गी ने आजकल अण्डे देन

बड़ी मछली छोटी मछली को ढूँढते-ढूँढते थक गई है। क्या तुम उसे छोटी मछली तक पहुँचने का रास्ता बता सकते हो?





कक्षा में आ गई। फिर पानीपूरी चाची शाम को पानीराम चाचाजी को बता देंगी। फिर कल आप पानीपूरी चाची से पूछना कि चाची आपने चाचा को बताया या नहीं। अगर वे बताना भूल गई हों तो आप उनसे कह देना, आज ज़रूर बता दें। फिर अगले दिन पूछकर पता कर लेना चाची ने चाचा को बताया कि नहीं।" अमिया ने डाकिए को समझाया।

"देखो, यह तो बहुत लम्बा चक्कर हो जाएगा अमिया! मैं ऐसा करूँगा चिट्ठियाँ बाँटने के बाद बस-अड्डे पर जाकर पानीराम जी को उनके ठेले पर ही जाकर बता आऊँगा।" डाकिए ने कहा।

"तब फिर चाची को कौन बताएगा?"

"अब मैं चलता हूँ अमिया।" डाकिए ने साइकिल आगे बढ़ा दी।

"रुको तो सही पहले आप। जब आप चाची को बताओगे तो उनके पड़ोस में ही समीरा दीदी रहती हैं। वे मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। आप उनको भी बता देना।" अमिया ने साइकिल के कैरियर पर हाथ रखकर कहा।

"मैं यहीं से बताता हुआ जाऊँगा और हरेक घर में बता दूँगा। सारी दुनिया को पता चल जाएगा कि अमिया तीसरी में आ गई है, बस।" डाकिए ने कहा।

"मेरी नानी को भी पता चल जाएगा?" पर वे तो रामसिंहपुरा में रहती हैं?

"तो क्या हुआ। मैं डाकघर से छुट्टी लूँगा और कल सुबह की पहली बस से तुम्हारी नानी को खबर देने के लिए रवाना हो जाऊँगा। और कुछ?" डाकिए ने झल्लाकर कहा।

"और तो कुछ भी नहीं। पर आप रामसिंहपुरा ही चले जाएँगे?" अमिया ने बात पक्की करने के हिसाब से पूछा।

"क्यों नहीं जाऊँगा। यही तो एक काम बचा है जो मुझे इस दुनिया में करना है।" कहते हुए डाकिए ने साइकिल दौड़ा दी। "तो आप ज़रूर चले जाना। आप कितने अच्छे हैं। आप दुनिया में सबसे अच्छे हैं। अण्डे देने वाली मुर्गी से भी अच्छे।" अमिया ने कहा। चक मक

मार्क ट्वेन एक बहुत लोकप्रिय लेखक थे। एक बार उनके एक प्रशंसक ने उन्हें खत लिखा। उसे मार्क ट्वेन का पता नहीं मालूम था। उसने पत्र को लिफ़ाफ़े में डालकर पते की जगह लिखा:

श्रीयुत् मार्क ट्वेन, पता नहीं मालूम,
ईश्वर करे, यह पत्र उन्हें मिल जाए।

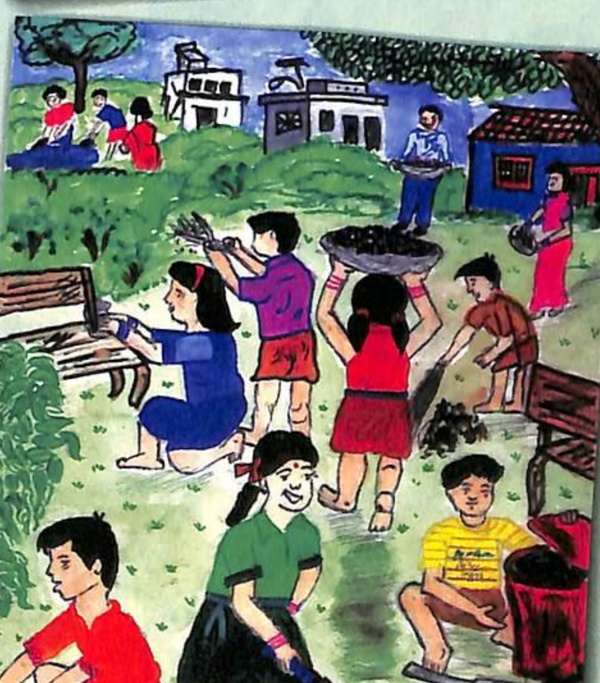
कुछ दिनों के बाद उस प्रेमी पाठक को मार्क ट्वेन का पत्र मिला। पत्र में सिर्फ इतना लिखा था -

ईश्वर ने कृपा की।
मार्क ट्वेन

मेरा पन्ना



आलम जमील अहमद पावसकर, वडाला, मुम्बई



अनिल पूनम परमार, छठी, घाटकोपर, मुम्बई










चित्र पहेली

कविता तिवारी





1	2		■	■	3			4
■		■	5			■	■	
6				■	7	8	■	■
	■	■	9		■	10		11
12	13		■	■	14		■	
■		■	■	■		■	15	
16		■	17			18	■	■
	■	19		■	■	20		21
22			■	23			■	















































चित्रः कनक

पृष्ठ 27 का शेष हिस्सा

आखिर चुक्कू कहाँ...

सहसा मैंने देखा राधेश्याम के गालों पर आँसुओं की धार बह रही है। वह आँसू पोंछ भी नहीं रहा था। मैंने पहली बार राधेश्याम को रोते देखा था। मेरे मुँह से अचानक निकला, "राधेश्याम! तू रो रहा है?"

हम सकते में थे। किसी को समझ में नहीं आया कि क्या करे! तभी हममें सबसे छोटा जक्कू बोला, "यार राधेश्याम! तू मुझे ही अपना चुक्कू समझ ले!"

मुन्नू ने कहा, "तू पूँछ हिला सकता है?"

जक्कू बोला, "हाँ!" और पीछे से कमीज़ उठाकर पुट्ठे मटकाकर दिखाने लगा।

सब हँस पड़े। राधेश्याम के चेहरे पर भी मुस्कान आ गई। उसने अपनी लम्बी-लम्बी बाहें फैलाकर हम सबको अपने से सटा लिया।

उस समय मैंने एक बड़ी अजीब-सी खुशबू को महसूस किया। मैं तबसे ढूँढ रहा हूँ। वैसी खुशबू आज तक दुनिया में फिर कहीं नहीं मिली। क्या वह हमारे निष्कलुष प्रेम की खुशबू थी? या उसमें थोड़ी खुशबू चुक्कू की भी थी?

क्या पता!

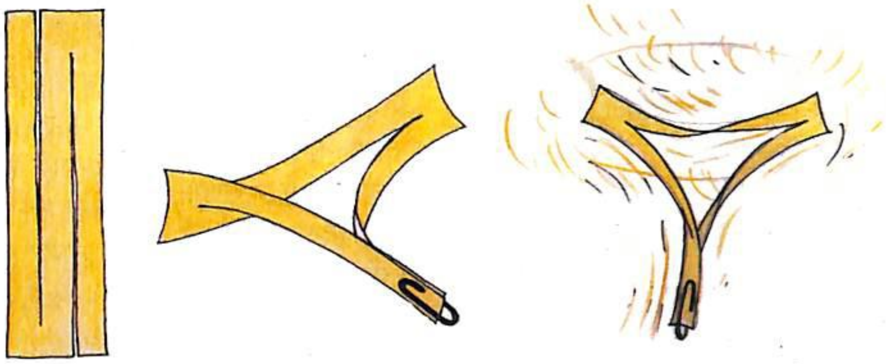
अकबर इलाहाबादी

अकबर इलाहाबादी मशहूर शायर हुए हैं। बुढ़ापे में उनकी आँखों की रोशनी कमज़ोर हो गई थी। उन्हें ऑपरेशन करवाना पड़ा। ऑपरेशन के बाद डॉक्टर ने आँखों पर पट्टी बाँधी और अपनी फीस लेकर चलता बना। थोड़ी देर बाद उनके बेटे हसरत हुसैन कमरे में आए और उनसे हाल-चाल पूछा तो अकबर इलाहाबादी ने एक शेर कहकर अपना हाल बताया...

रोशनी आए तो हम देखें कहीं अपना हिसाब,
वो तो दो सौ ले गए आँखों पे पट्टी बाँध के।

तुम भी बनाओ

पोस्टकार्ड के आकार का और लगभग उतना ही मोटा कागज़ लो और उसे लम्बाई में बीच से आधा कर लो। अब इससे लगभग बराबर आकार की दो पट्टियाँ चित्रानुसार काट लो। इन दोनों पट्टियों को चित्रानुसार यूपिन से जोड़ लो। अब इसे ऊँचाई से गिराओ और देखो कैसे यह झूमते-घूमते नीचे आती है।



कच्ची मूँगफली लो और उसे बीच से आड़ा काट लो। दाना निकाल लो और छिलके को मनपसन्द रंगों से रंग लो। अब उन पर मनचाहे चेहरे बना लो। और फिर कागज़, ऊन, तार जैसी चीज़ों से उनके बाल, मूँछें या टोपी आदि बनाकर गोंद आदि से चिपका लो। अब इन्हें अपनी उँगलियों पर पहन लो और जैसे चाहो नचाओ।



चित्रः जितेन्द्र ठाकुर

विनोद कुमार शुक्ल

हरी घास की छप्पर वाली झोपड़ी और बौना पहाड़! (XII)

करीब-करीब सभी साथ स्कूल पहुँचे होंगे। परन्तु यह साथ पहुँचना ऐसा था कि इसमें जो पीछे था वह हमेशा पीछे नहीं था। वह आगे भी हो जाता। जो आगे था वह हमेशा आगे नहीं था पीछे भी हो जाता। बस्ती के स्कूल का रास्ता आधे घण्टे का था परन्तु बच्चों ने रास्ता लगातार सीधे स्कूल की दिशा में न चलकर दाएँ, बाएँ, पीछे और बोलू - कूना ने हवा में उड़कर भी काटा। कूना को हवा में उड़ना याद नहीं था। बच्चे कभी सपने बात करते तो कूना सपना क्या होता है पूछती। उसने सपना कभी नहीं देखा। देखा भी हो तो उसे याद नहीं रहता। बीनू यदि कहता, "आज मैंने एक सपना देखा।" तब कूना कहती, "मुझे भी सपना दिखाओ।" "मैं कैसे दिखाऊँगा।" बीनू ने कहा।" तुमको चना खाने को दिया था, वह मेरा चना था।" कूना कहती । फिर बोलू समझाते हुए कहता, "सपना खुद देखना पड़ता है।" तब कूना कहती, "मैं भी खुद देखूँगी। तुम मत देखना।" तब बोलू कहता, "तुम देख लेती हो और भूल जाती हो।" "मैं नहीं भूलती। गुरूजी कहते हैं मेरी स्मरण शक्ति अच्छी है। तुम लोग सपना देखते रहते हो मैंने एक बार भी नहीं देखा।" यह कह कूना रूठ जाती।

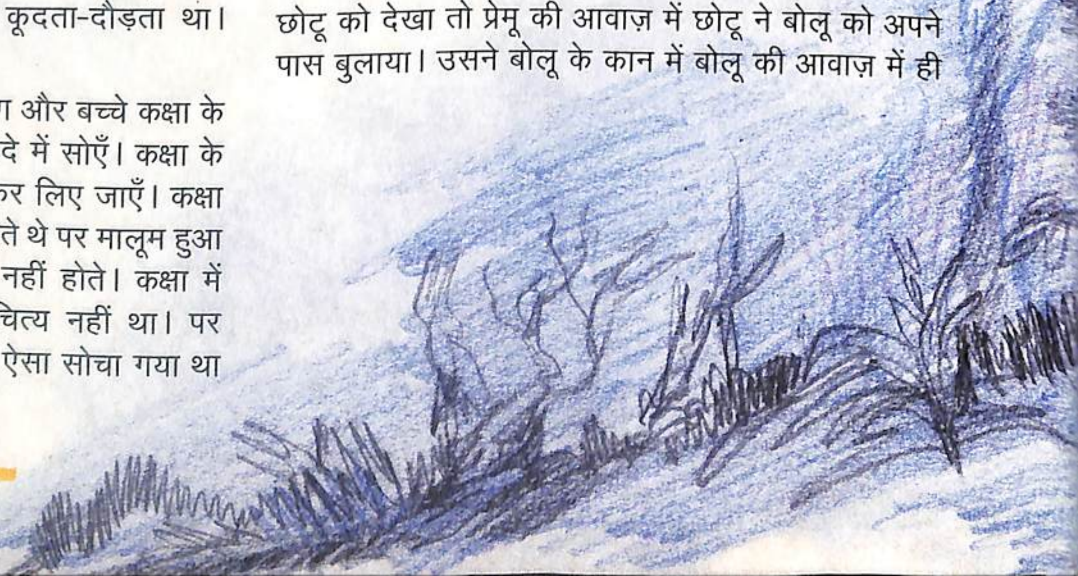
बैलों और गायों को स्कूल के किनारे लगे पेड़ों से बाँध दिया गया था। एक गाय बिलकुल डाल की तरह पतले पेड़ से बँधी थी। हल्का-सा खिंचाव गाय को बँधा होने का आभास देता उससे ज़्यादा गाय खींचती नहीं थी इसलिए पेड़ के टूटने का डर नहीं था।

गाय, बैलों के सामने पैरा डाल दिया गया था। कूना का घोड़ा आने-जाने वालों से बिचककर कूदता-दौड़ता था। कूना के चाचा ने उसे भी बाँध दिया था।

गुरूजी चाहते थे कि बड़ी उम्र के लोग और बच्चे कक्षा के अन्दर सोएँ। सुरक्षा के लिए युवा बरामदे में सोएँ। कक्षा के दरवाज़े सोने से पहले अन्दर से बन्द कर लिए जाएँ। कक्षा के बाहर के दरवाज़े बाहर से बन्द हो जाते थे पर मालूम हुआ कि अधिकाँश दरवाज़े अन्दर से बन्द नहीं होते। कक्षा में अन्दर सिटकनी लगाने का कोई औचित्य नहीं था। पर अन्दर सिटकनी क्यों लगी होगी? क्या ऐसा सोचा गया था कि घण्टी बजने के बाद दरवाज़े को अन्दर से बन्द कर लें ताकि देर से आने वाले विद्यार्थी चुपके से घुस न जाएँ। इस कारण से तो सिटकनी नहीं लगाई गई होगी। क्योंकि समय के पहले विद्यार्थी स्कूल आ जाते थे। और दरवाज़ा खुलने का रास्ता देखते थे। कुछ बच्चे जो पहले आकर पढ़ना चाहते वे चौकीदार के घर जाकर दरवाज़ा खोलने का अनुरोध करते। चौकीदार एक दो कक्षाएँ खोल देता। कमरे के अन्दर बरसात, गरमी में आराम रहता था। जाड़े में बच्चे बरामदे की धूप में बैठकर पढ़ते। अधिकतर बच्चे मैदान में खेलने के लिए जल्दी आते। स्कूल की घण्टी बजते ही सब बच्चे दौड़ते हुए प्रार्थना की जगह इकट्ठे हो जाते। खिड़कियों में सिटकनी हमेशा अन्दर की तरफ लगती। खिड़की में बाहर की तरफ की सिटकनी को देखा-सुना नहीं गया था। खिड़की में बाहर साँकल भी नहीं लगाई जाती थी। अन्दर से बन्द दरवाज़े का मतलब कि कोई चुपके से न घुसे। दरवाज़ा खुलवाने के बाद घुसे।

बच्चों का देर से स्कूल आने का कोई ज़रूरी कारण होता था। स्कूल डरावनी जगह नहीं थी। स्कूल जाने में बच्चों को डर नहीं लगता था। रात में भी नहीं। स्कूल से बच्चों की इतनी आवाज़ें आ रही थीं कि स्कूल शाम को पेड़ लग रहा था। और सोने के पहले पतरंगी का गुल-गपाड़ा था। यद्यपि रात हो चुकी थी।

हाँफता हुआ छोटू गोल स्कूल पहुँचा। बच्चों की भीड़ में किसी एक को पहचान पाना कठिन था। बोलू अपनी कक्षा के सबसे ऊपर वाले आले में खूण्टी पकड़े खड़ा था। देख कर लगता था कि कहीं खो गया है। छोटू के "बोलू-बोलू" चिल्लाने को वह सुन नहीं रहा था। छोटू ने फिर बोलू को पहले बोलू की आवाज़ में पुकारा। वह सुनता भी कैसे। एक तो वह खो गया था। दूसरे अपनी आवाज़ वह तब सुनता है जब वह किसी से बात करता है। बोलू तब सुनेगा जब वह बोलकर अपने को "बोलू" पुकारे। या वह अपना नाम बोलू किसी को बताए। इसके बाद छोटू ने प्रेमू, फिर कूना, फिर गुरूजी की आवाज़ में बोलू को पुकारा तो पूरी कक्षा में सन्नाटा छा गया था। या छोटू ने जो अपने को खो दिया था, तब अपने को पा लिया हो। बोलू ने गुरूजी की आवाज़ की तरफ जब छोटू को देखा तो प्रेमू की आवाज़ में छोटू ने बोलू को अपने पास बुलाया। उसने बोलू के कान में बोलू की आवाज़ में ही



बताया, "भैरा मुरम की खदान में गिर गया है और निकल नहीं पा रहा है।" फिर सभी मित्रों को कान में उन्हीं की आवाज़ में भैरा के गिरने की बात बताई। जैसे, कूना को कूना की आवाज़ में।

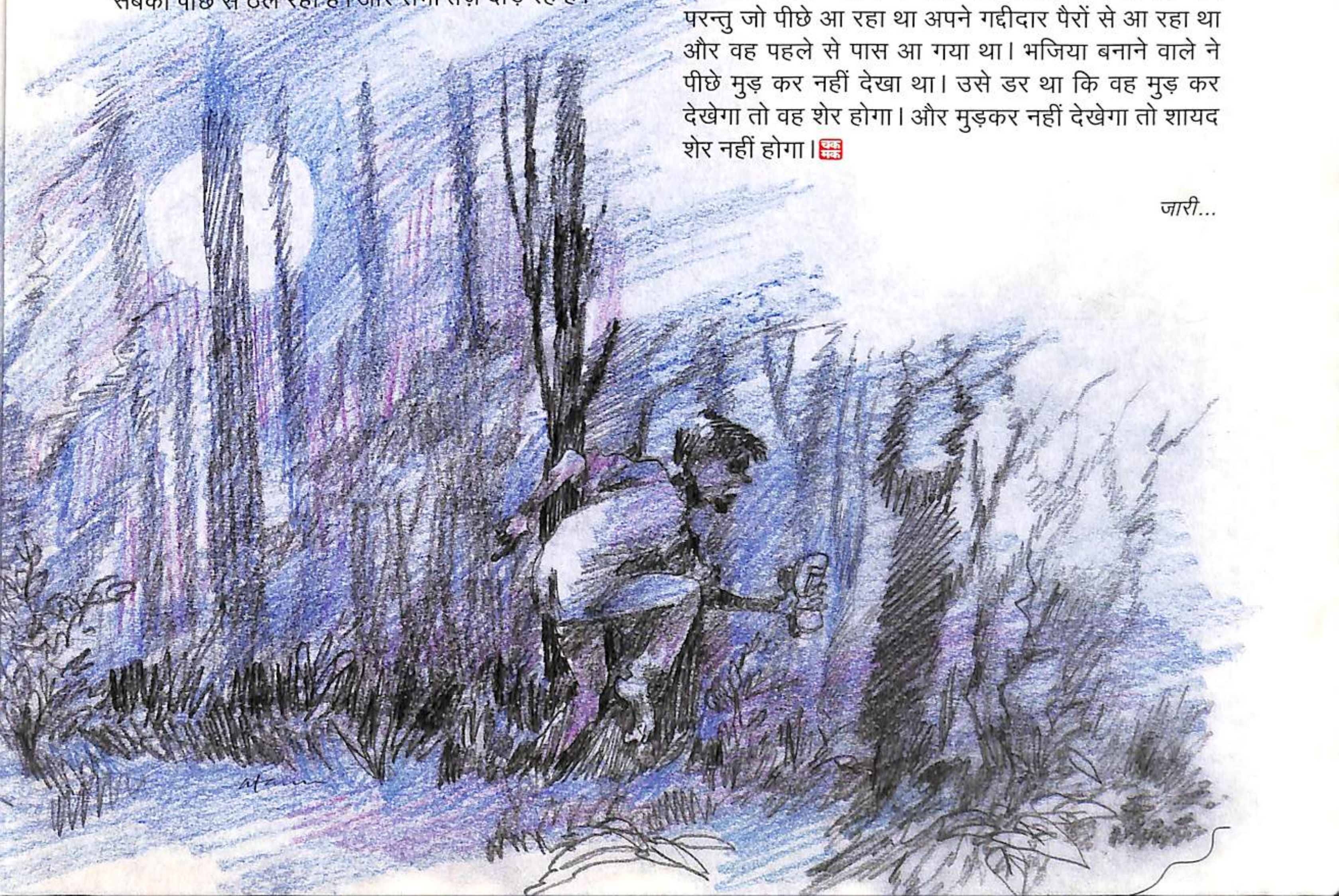
स्कूल की भगदड़ की आड़ में सबके सामने ये लोग निकले। इनसे किसी ने कुछ पूछा भी नहीं। भैरा के पास पहुँचने की जल्दी में बताना भी भूल गए। तभी बादल ने उनके मैदान के पार होने तक चन्द्रमा को छुपा लिया। धुँधली छाया के झुण्ड की तरह ये थे। बादल के कारण सबने इन्हें अनदेखा किया, चन्द्रमा ने नहीं। मैदान के पार होते ही चन्द्रमा बादल से निकल कर इनके साथ हो लिया। जहाँ ये ठिठक कर रुकते चन्द्रमा भी रुक जाता। दौड़ते-दौड़ते कूना ने कहा, " भूल गए घोड़े को ले आते।"

बोलू सबसे आगे था। वह दौड़ने के लिए गाने लगा था- "भागो-दौड़ो छू लो जाओ। कोई किसी के पीछे न हो। कोई किसी के आगे न हो। साथ भागो। साथ पहुँचो। पहुँचने में देर न हो। साथ चलो भई साथ चलो आगे वालों के साथ चलो। छू हो जाओ। उड़न छू हो जाओ।" बोलू इतना हल्का हो चुका था कि उसे पता नहीं चला कि दौड़ते-दौड़ते धरती को छोड़ वह हवा में है। जबकि उनके साथियों को लग रहा था कि बोलू तेज़ दौड़ रहा है। सभी को लग रहा था कि हवा उन सबको पीछे से ठेल रही है। और सभी तेज़ दौड़ रहे हैं।

बजरंग होटल का भजिया बनाने वाला उसी तरह दौड़ रहा था जैसे उसे छू कर दिया गया हो। उसे दौड़ना ही याद रहा। दौड़ कर कहाँ जाना है वह भूल गया। जब वह मुरम की खदान से आगे निकल गया तब उसे याद आया कि मुरम खदान जाना है। वह लौटा। वह थक चुका था इसलिए धीरे-धीरे लौटकर सुस्ता रहा था। उसे अपने पीछे किसी के आने का आभास हुआ। दबे पैरों से आ रहा था, ताकि पत्तों की चरमराहट की आवाज़ कम हो। वह भी दबे पाँव चलने लगा। वह चाहता था कि उसके चलने से पत्तों की आवाज़ न हो, जिससे वह पीछे चलने की आहट को साफ सुन सके। जब भजिया बनाने वाला पैर रखता तब उसका पीछा करने वाला पैर रखता। जब वह रुकता तो पीछे वाला भी रुक जाता। इतने में चन्द्रमा बादल में छुप गया। अँधेरा बढ़ गया। भजिए बनाने वाले को क्या पता कि इसी समय बोलू के साथ उसके मित्र स्कूल से निकल कर मुरम की खदान की ओर चल पड़े हैं। और चन्द्रमा उनकी सहायता कर रहा है। आवाज़ न हो इसलिए भजिया वाले ने अपने प्लास्टिक के कड़े तल्ले के जूते उतार लिए। और हल्के पैरों से चलने लगा। इस बार उसे लगा कि पीछे दो लोग हैं। या ऐसा एक हो जिसके चार पैर हों। वह डर गया कि उसके पीछे कहीं शेर तो नहीं।

नंगे पैर होने से सूखे पत्तों के स्पर्श को महसूस कर रहा था। अब उसके चलने से पत्तों की आवाज़ कम हो गई थी। परन्तु जो पीछे आ रहा था अपने गद्दीदार पैरों से आ रहा था और वह पहले से पास आ गया था। भजिया बनाने वाले ने पीछे मुड़ कर नहीं देखा था। उसे डर था कि वह मुड़ कर देखेगा तो वह शेर होगा। और मुड़कर नहीं देखेगा तो शायद शेर नहीं होगा।

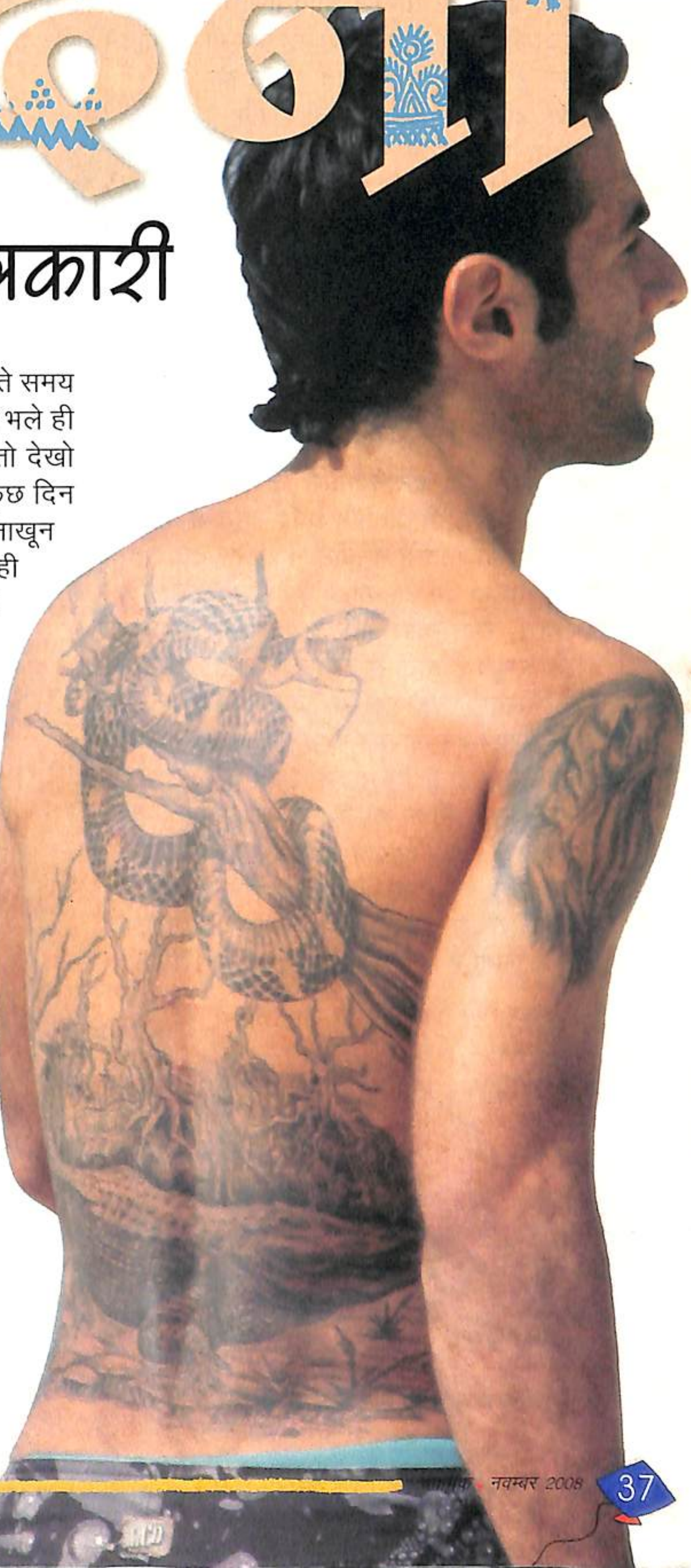
जारी...



शम्पा शाह

गोदना

यानी शरीर पर चित्रकारी



कहते हैं ना कि भले ही सबका गला सुरीला नहीं होता पर नहाते समय सभी गायक बन जाते हैं। इसी तरह किताब-कॉपी में चित्र बनाना भले ही किसी को पसन्द न आए पर हाथ-पैरों में गूदा-गादी करनी हो तो देखो सब के सब चित्रकार निकलेंगे। क्या ही अच्छा हो जो स्कूल में कुछ दिन सिर्फ हाथ-पैरों पर चित्र बनवाए जाएँ। वैसे तो मेहँदी, आलता, नाखून पॉलिश और बिन्दी-काजल भी तो शरीर पर की गई चित्रकारी ही तो है। संजय दत्त, शिल्पा शेट्टी, शाहरुख खान ने भी गहरी नीली स्याही से अपने शरीर पर टैटू चित्र बना रखे हैं।

शरीर पर चित्रकारी यानी गोदना





शरीर पर चित्र बनाने की परम्परा बहुत पुरानी है। दक्षिण अफ्रिकाई देशों, ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड, पौलीनेशिया चीन, जापान, इण्डोनेशिया आदि जैसे कई देशों के आदिवासी समाजों में शरीर पर कच्चे या पक्के चित्र बनाने की लम्बी परम्परा रही आई है। कई समाजों के लोग शिकार करने या मछली पकड़ने जाते समय, नृत्य-उत्सवों पर अपने शरीर पर मिट्टी, गेरू या फूल-पत्ती के रस से कच्चे चित्र बनाते हैं। काम पूरा होने पर इन्हें मिटा लेते हैं। इसी तरह पक्के चित्रों को टैटू, गोदना या गुदना कहते हैं। "टैटू" ताहिती भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है "अंकित करना"।

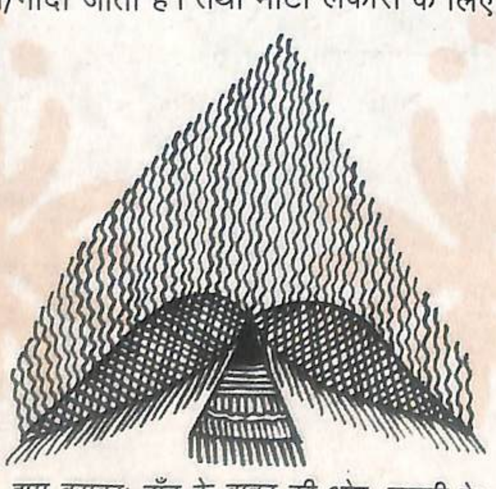
उड़िया कथाओं में गोदना

एक उड़िया कथा में ज़िक्र आता है कि यम देवता को लोगों की पहचान करने में बड़ी दिक्कत होती थी। इसलिए सबसे पहले उन्होंने अपनी बहू के गोदना चित्र बनवाए और फिर दूसरों से भी ऐसा ही करने को कहा ताकि उन्हें पहचानने में सुविधा हो। शायद इसीलिए ग्रामीण आदिवासी स्त्रियाँ आज भी मानती हैं कि बाकी सब कुछ यहीं धरा रह जाएगा पर गोदने शरीर के ऐसे गहने हैं जो मरने के बाद भी उनके साथ जाएँगे। उनका मानना है कि गोदना गुदवाने में दर्द तो बहुत होता है लेकिन अगर यह दर्द सह लिया तो जीवन के दूसरे दर्दों को सहने की ताकत आ जाती है। यानी इन समाजों में गोदने सिर्फ सुन्दरता की खातिर तो नहीं ही बनाए जाते।



गोदना बनाया कैसे जाता है?

भारत में गोदना बनाने वालों के लिए देवारिन, बदनिन, चिन्हारिन, गोदावरिन आदि बहुत से नाम हैं। शरीर पर पक्का गोदना बनवाने में खासा दर्द सहना पड़ता है। गोदना का रंग काली स्याही या कोयले को बारीक पीस, छान कर आक अथवा ऐसे ही किसी दूसरे पेड़ के दूध में घोल से तैयार की जाती है। इसके आलावा भिलवा, रमतिल्ला या किसी अन्य तेल को जला कर उससे बने काजल में पानी या तेल मिलाकर भी स्याही तैयार होती है। गोदने बनाने के लिए सबसे पहले पतली-सी सींक को स्याही में डुबोकर चित्र बनाया जाता है। फिर रंग को चमड़ी में घुसाने के लिए सुइयों से चित्र की रेखाओं पर छेद किए जाते हैं। पतली लकीरों के लिए 1 से 5 सुइयाँ मिलाकर छेदा/गोदा जाता है। तथा मोटी लकीरों के लिए 5 से 20 सुइयाँ मिलाई जाती हैं। धातु की खोज से पहले मछली के काँटों या पत्थर से नुकीली सुइयाँ बनाई जाती थीं। बहुत से पेड़ों के मज़बूत काँटे भी सुई का काम देते हैं। अब तो स्टील की सुइयाँ ही उपयोग में लाई जाती हैं। अब तो बैटरी या बिजली से चलने वाली मशीन से भी गोदना किया जाता है। सुइयों के चुभने से छलक आए खून को साफ कपड़े से पोंछकर फिर से रंग लगाया जाता है। गाँवों में गोदना गुदवाने के बाद घाव को ताज़े गोबर-पानी से धोकर उस पर हल्दी-तेल का लेप किया जाता है। गोदने की जगह पर आई सूजन और दर्द से हफ्ते-दस दिन में छुटकारा मिल जाता है।



झूम बराबरः बाँह के बाहर की ओर, कुहनी के ठीक नीचे गोदा जाता है



अजब चचिरैया- बाँह में अन्दर की ओर गुदवाते हैं

गोदना की बैगा कहानी

एक बार देवताओं की सभा हुई। इन्द्र किसी बात पर गुस्सा हुए और सभा छोड़कर चले गए। कोई उन्हें मनाने नहीं गया पर महादेव-पार्वती को चिन्ता सताने लगी कि अब धरती पर बिना बारिश के जीवन कैसे चलेगा? बारह बरस लम्बा अकाल पड़ा। महादेव-पार्वती ने धरती की सेवा करने वाले नागा बैगा तथा उसकी पत्नी नागा बैगिन को इन्द्र को मनाने के लिए कहा। बैगिन को बिना साज-सिंगार के इन्द्र के दरबार में जाने में संकोच हो रहा था। तब महादेव-पार्वती ने बादी-बदनिन (गोदना चित्रकार) को बनाया, जिन्होंने उस बैगा स्त्री का गोदने से सिंगार किया। बैगा-बैगिन इन्द्र के पास गए और गुहार लगाई। उधर महादेव ने बारिश की आस में धरती पर हल चलाना शुरू कर दिया। हल की नस धरती में सोए मेंढक को लगी। वह ज़ोर-ज़ोर से नरियाने लगा। उसकी देखा-देखी मोर कहरियाने लगे। देखा-देखी सारे जानवरों ने आसमान सर पर उठा लिया। आवाज़ सुन इन्द्र घबरा उठे। उन्हें लगा कि यदि अब बैगा-बैगिन की बात नहीं सुनीं तो सारे जीव बगावत कर देंगे। उन्होंने झट से बैगा-बैगिन की बात मान ली और धरती पर झमाझम पानी बरसने लगा।

गोदने के डिज़ाइन

ग्रामीण एवं आदिवासी समाजों में गोदना गुदवाने की परम्परा आज भी कायम है। प्रायः सभी आदिवासी समाजों के अपने कुछ खास डिज़ाइन होते हैं जिनसे उन्हें एक खास पहचान भी मिलती है। जैसेः

इलाका/समाज	डिज़ाइन
गुजरात तथा राजस्थान के रेगिस्तानी इलाकों में रहने वाला घुमन्तु पशुपालक रेबारी समुदाय	रेबारी स्त्रियाँ गले पर रिण (-), धन (अ), बिन्दू (.) तथा ऊँट आदि के चिन्हों की कई कतार बनवाती हैं। यदि कोई लड़की कुछ ज़्यादा सुन्दर हो तो वह नज़र के टीके के बतौर गाल पर धन का चिन्ह गुदवा लेती है।
छत्तीसगढ़ की उराँव आदिवासी स्त्रियाँ	माथे पर खड़ी और आड़ी रेखाओं से बने आकार बनाती हैं
गुजरात, राजस्थान तथा मध्यप्रदेश की भील तथा भिलाला आदिवासी	स्त्रियाँ आँखों के नीचे काजल जैसी रेखा तथा आँखों के बाहरी कोर पर अर्ध-चन्द्राकार तथा बुन्दकियों से बने चीरल्या, बाँह और पैरों पर आम्बा-मोर (आम पर मोर)
अरूणाचल प्रदेश की आपातानी समूह	ऊपर कपाल से नाक के छोर तक इकलौती मोटी लकीर
मध्यप्रदेश की गोंड स्त्रियाँ	मुर्गा जोड़ी, कंघी, करेला चानी, सीता चौक, लवंग फूल
बिहार के ग्रामीण अंचल में	झूम बराबर
मध्य प्रदेश व छत्तीसगढ की बैगा स्त्रियों को गोदना गुदवाने का बहुत शौक होता है। वे शरीर के हर भाग पर मोटी रेखाओं से बड़े-बड़े गोदने गुदाती हैं।	माथे के बीचोंबीच "ट" आकार का चूल्हा और उसमें एक बिन्दु जो आग का प्रतीक है, उसके दोनों ओर अन्न और चावल के ढेर। हाथ, पैर, पीठ, छाती, गला सबके लिए खास गोदने हैं।

किस उम्र में गोदने गुदवाते हैं?

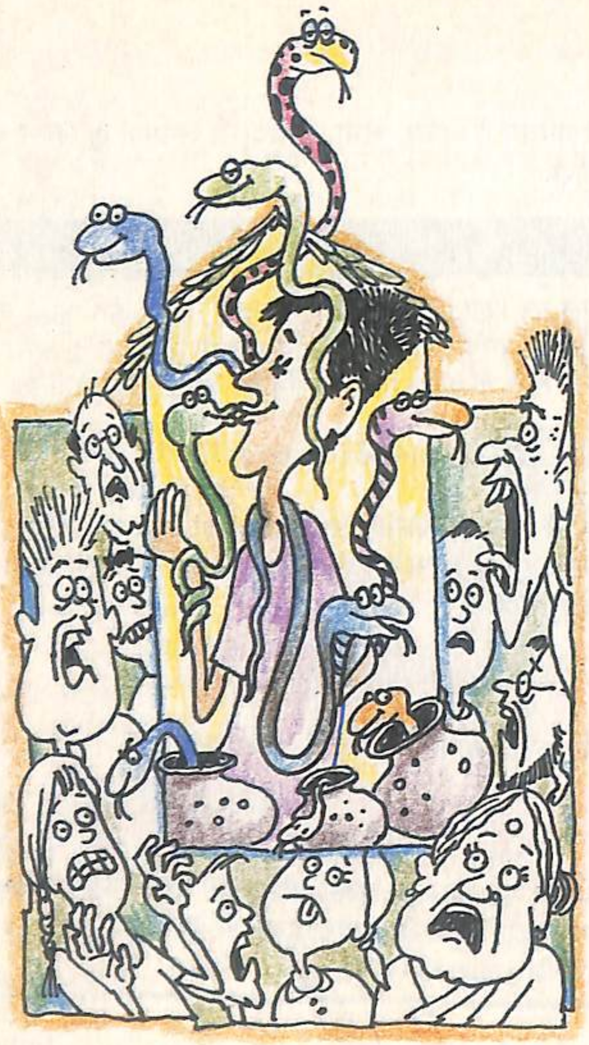
इतने सारे गोदने बनवाने हों तो यह एक दिन में तो हो नहीं सकता। दर्द से प्राण ही निकल जाएँगे। इसलिए स्त्रियाँ कई सालों में धीरे-धीरे यह काम कराती हैं। 8-10 बरस की उम्र में लड़की पहला गुदना माथे पर गुदाती है। 11-14 बरस की उम्र में पीठ पर, 15-16 बरस में पैर-हाथ के अगले हिस्से, 16-18 बरस में पैरों के पिछले हिस्से और बच्चा पैदा होने के बाद छाती पर गुदवाती हैं।



ज़्यादातर समाजों में खास तौर पर स्त्रियाँ ही गोदने गुदवाती हैं। पुरुष शौकिया तौर पर किसी देवता की आकृति या फिर कोई नाम गुदवाते हैं। स्त्रियों के गोदनों से उनकी चिन्ता, स्वप्न और कल्पनाओं की झलक भी मिलती है। चूल्हे में आग, अन्न के ढेर, सीता की रसोई, कुएँ-बावड़ी, सूरज-चाँद जैसे चिन्ह लगभग हर आदिवासी/ग्रामीण समाज में मिलते हैं। ये परिवार के लिए अन्न-जल जुटाने की चिन्ता को झलकाते हैं। तमाम देवी-देवता, उनके रथ-पालकी, चौक शुभकामना के चित्र कहे जा सकते हैं। तरह-तरह की जंजीरें, घाट की सीढ़ियाँ, बैल की आँख आदि बुरी नज़र, बीमारियों से बचाव के टोटके का काम करते हैं। कुछ भक्त समुदाय जैसे रामनामी सम्प्रदाय के लोग अपने पूरे शरीर पर रामनाम गुदवाते हैं।



वैसे गोदने के इतिहास पर नज़र डालने से लगता है कि आदिवासी तथा शहरी समाजों के लिए गोदने के अलग-अलग अर्थ रहे हैं। लम्बे समय तक अपराधियों, दुश्मनों को सज़ा देने, उनकी अलग पहचान रखने के लिए दण्ड स्वरूप उन्हें गोदा जाता था। दूसरी ओर किसी समय में बड़ा युद्ध जीतने पर राजा/मुखिया के शरीर पर बतौर तमगे गोदने गोदे जाते थे। बड़े-बड़े जंगली या मिथकीय जीव, खोपड़ी, लड़ाई के अस्त्र, कुछ ऐसे ही प्रतीक थे। समुद्र में लम्बी यात्राएँ करने वाले नाविक लंगर, तोप खाना, क्रॉस, ड्रेगन के टैटू गुदवाते थे। आज पश्चिमी देशों के रॉक स्टार्स, फिल्म स्टार्स के बीच भी गुदने काफी लोकप्रिय हो गए हैं।



शिवनारायण गौर

महेश का साँप

महेश को साँप पकड़ने और पालने का बहुत शौक था। इस शौक के चलते उसका घर में परिवार के साथ रहना मुश्किल होता था। इसीलिए उसने अपना एक अलग घर बनाया। पत्तों की छत और लकड़ी के ढाँचे वाला घर। उसके इस घर में होते थे छोटे-बड़े कई तरह के साँप और उसकी एक खटिया। बस यही थी महेश की दुनिया।

साँपों को रखने के लिए महेश ने बढ़िया व्यवस्था की थी। उसने अपनी खटिया के चारों तरफ कुछ मटके रखे थे। इन मटकों में कई छेद हुआ करते थे। जिससे कि उनमें हवा अच्छी तरह से जा सके। मटके के मुँह पर वह एक बड़ा-सा दिया ढँक देता था। बस यही साँपों का घर था। हर मटके में एक साँप रखा होता। करीब बीस ऐसे मटके होंगे जिनमें महेश ने साँप रखे थे। लोगों के लिए उसका यह झोपड़ीनुमा घर एक संग्रहालय था। आसपास के कई गाँवों के लोग उसे अच्छी तरह से जानते थे।

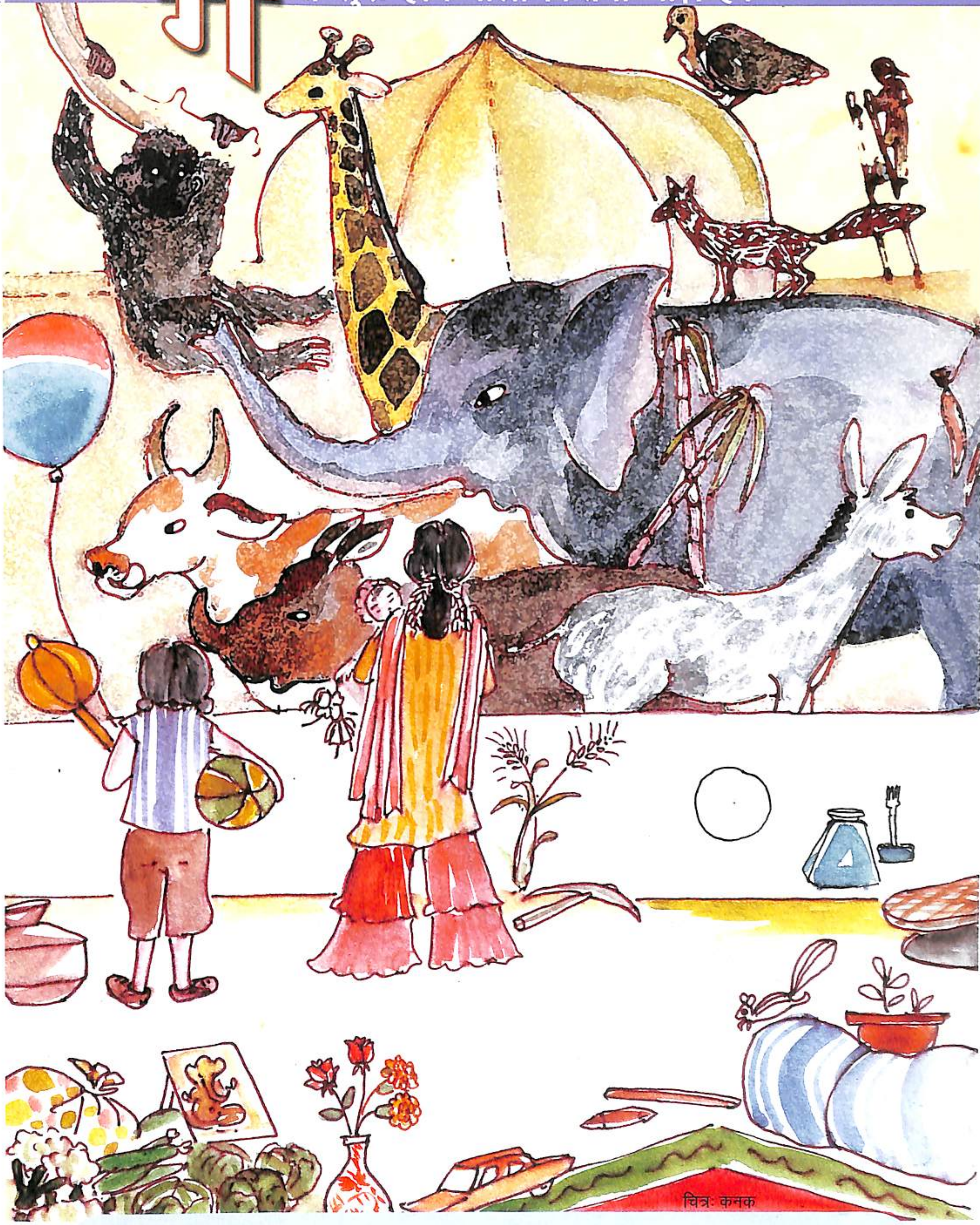
महेश मेरे साथ ग्यारहवीं और बारहवीं दो साल तक साथ पढ़ा। उन दो सालों में करीब पाँच-छह बार उसके घर भी जाना हुआ। ग्यारहवीं की पढ़ाई के लिए महेश पास के कस्बे बानापुरा जाता था। उसके पास एक काले रंग की राजदूत मोटरसाइकिल थी। इसी गाड़ी से वो स्कूल आता-जाता।

महेश घर में पाले बीसेक साँपों में से किसी एक को लेकर ही घर से निकलता। साँप, हर दिन नया होता था। हर साँप को बाहर घूमने का मौका मिले इस बात का महेश ध्यान रखता था। साँप रखने के लिए उसके पास कुछ नहीं था। वह कभी साँप को गाड़ी की डिग्गी में रखता तो कभी अपने शर्ट के अन्दर रख लेता। एक बार वो साँप को स्कूल ले आया। फिज़िक्स का पीरियड चल रहा था। अग्रवाल सर क्लास ले रहे थे। महेश आगे से दूसरी बेंच पर अकेला बैठा था। उसके पास साँप रहने के डर से सभी उसके पास बैठने से हिचकते और डरते। जब वह देर से स्कूल आता और उसे किसी के साथ बैठना होता तो साथ वाला उठकर अलग बैठ जाता। कई बार शिक्षक ज़िद करके उसके पास बैठा देते तो साथ वाला जैसे-तैसे डरे-सहमे पीरियड खत्म होते ही अपनी जगह बदल देता।

उस दिन अग्रवाल जी के पीरियड में भी यही हुआ। महेश के पास एक लड़के को बैठा दिया गया। करीब पन्द्रह मिनिट बाद महेश के इधर-उधर खिसकने के चक्कर में साँप बाहर निकल गया। पूरी क्लास में हल्ला होने लगा। लड़के बाहर भागने लगे। महेश साँप को पकड़ने के लिए कक्षा में दौड़ा। अग्रवाल जी उस पर चिल्लाए। सारे शिक्षक उस पर नाराज़ हुए। कुछ को उसे देखकर आश्चर्य भी हो रहा था। स्कूल में बच्चों के लिए ये घटना सामान्य थी क्योंकि वे तो जानते थे कि महेश साँपों का प्रेमी है।

ऐसा ही एक वाक्या उसके स्कूल से घर जाते वक्त का भी है। एक बार महेश स्कूल से घर जा रहा था। साँप उसके शर्ट और बनियान के अन्दर था। उसके साथ कोई पीछे बैठकर जाने वाला था। सुरक्षा की दृष्टि से महेश ने साँप को गाड़ी की डिग्गी में रखना उचित समझा। उसने साँप को गाड़ी की डिग्गी में रखा। डिग्गी लगाई। जब चलने लगा तो उसे लगा कि किताब को भी डिग्गी में ही डाल दे। किताब डालने के लिए डिग्गी खोली तो उसने देखा कि डिग्गी में साँप नहीं है। फिर क्या था महेश साँप को ढूँढने में लग गया। आसपास हर जगह देखा लेकिन साँप कहीं नज़र नहीं आया। स्कूल के बच्चे में डर गए। हर किसी की आँखें बस साँप को ही ढूँढ रहीं थीं। महेश फिर से मोटरसाइकिल में ही साँप को ढूँढने लगा। थोड़ी देर बाद गाड़ी की सीट के नीचे बैठा साँप महेश को मिल गया। उसने उसे वहाँ से निकाला और डिग्गी में डालकर चला गया। महेश के साँपों के ऐसे कई सारे किस्से हैं।

इस पन्ने में ग से शुरू होने वाली कितनी चीज़ें हैं?



मैंने ढूँढीं .... ____________________

____

"ग" से शुरू होने वाली कौन-कौन-सी चीज़ें हमसे छूट गईं? उनके चित्र बनाओ।

पंजीयन क्र. 50309/85 के अन्तर्गत भारत सरकार के समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत। डाक पंजीयन क्र. म.प्र./261/ भोपाल/20(

बच्चों के बारे में

बच्चों के बारे में
बनाई गईं ढेर सारी योजनाएँ
ढेर सारी कविताएँ
लिखी गईं बच्चों के बारे में

बच्चों के लिए
खोले गए ढेर सारे स्कूल
ढेर सारी किताबें
बाँटी गई बच्चों के लिए

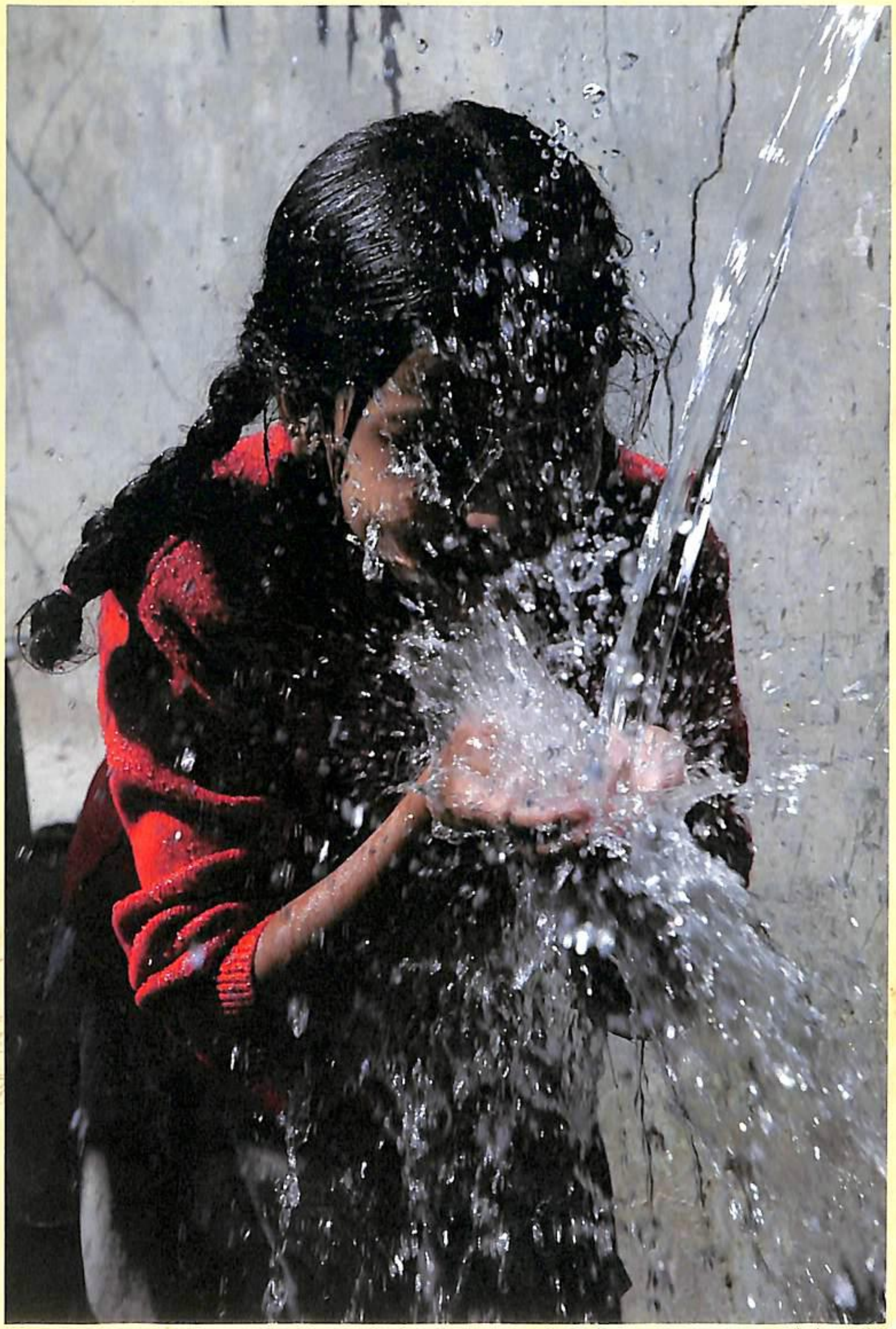
बच्चे बड़े हुए
जहाँ थे
वहाँ से उठ खड़े हुए बच्चे

बच्चों में से कुछ बच्चे
हुए बनिया हाकिम
और दलाल
हुए मालामाल और खुशहाल

बाकी बच्चों ने सड़क पर कंकड़ कूटा
दुकानों में प्यालियाँ धोईं
साफ किया टट्टीघर
खाए तमाचे
बाज़ार में बिके कौड़ियों के मोल
गटर में गिर पड़े

बच्चों में से कुछ बच्चों ने
आगे चलकर
फिर बनाईं योजनाएँ
बच्चों के बारे में
कविताएँ लिखीं
स्कूल खोले
किताबें बाँटीं
बच्चों के लिए

गोरख पाण्डेय



फोटोः सर्वेश

स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो प्रकाशक, मुद्रक सी. एन. सुब्रह्मण्यम की ओर से निदेशक, एकलव्य फाउण्डेशन द्वारा एकलव्य, ई-10 शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल-462016, (म.प्र.) से प्रकाशित तथा आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोनः 0755 - 2687589) से मुद्रित। सम्पादकः सुशील शुक्ल।